ટૂટતે વૃક્ષ
નઈ પૌધ



વેઢ રા

प्रिय रतनलाल शांत को —

केदार

17.9.64

टूटते वृक्ष, नयी पौध

(कहानियां)

वेद राही

गीताञ्जलि प्रकाशन :

२६६, १२ वाँ रास्ता खार, दरबार गढ़ रोड

बम्बई—५२ जम्मू ।

कहानियां

टूटते वृक्ष, नयी पौध

पहला संकरण : पांच सौ

प्रकाशक : दर्शो राही

मुद्रक : अमर आर्ट प्रेस, जम्मू ।

मूल्य : दो रुपये

टूटते

वृक्ष

नयी

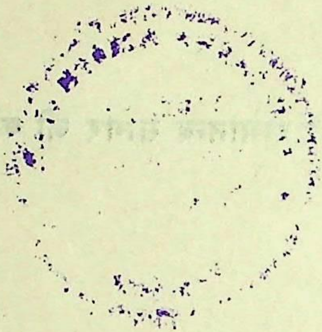
पौध

श्री रामानन्द सागर जी को—

भाई साहिब,

आपसे बहुत कुछ सीखा है—बहुत कुछ पाया है। इन कहानियों को समर्पित करते हुए 'ग़ालिब' की यह पंक्ति दोहरा रहा हूँ—
"हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ।"

—वेद राही



दीदी कब आयेगी

"मां, दीदी कब आयेगी ?"

गोपी की यह बात सुन कर बुहारते हुए मां के हाथ रुक गए। उस की आंखों में नमी के जाले-से तैरने लगे। भर्राई हुई आवाज़ में बोली, "गोपी तुझे बहिन की इतनी ही याद आती है तो उसके पास जा ही क्यों नहीं आते।"

"अकेले कैसे जाऊं, मां, कोई शहर जाने वाला दीखे तब न !" गोपी ने गले में से बस्ता निकाल कर ताकचे में रखते हुए कहा, "मां, अब जीजा जी कभी भी यहां नहीं आयेंगे ?"

"आयेंगे क्यों नहीं गोपी, तू तो बड़ा ही बेसब्र हो गया है। जब उन्हें छुट्टियां होंगी, वे तब आएंगे।"

"मां, जीजा जी फिर हमारे ही स्कूल में क्यों नहीं आ जाते, उन की जगह पर जो मास्टर आया है, मुझे तो ज़रा भी अच्छा नहीं लगता, पढ़ा तो सकता ही नहीं, शकल देखो तो हर समय जैसे पेट में मरोड़ उठ रहे हों।"

मां हंस पड़ी।

''गोपी, अपने जीजे तो सभी को अच्छे लगते हैं। दीदी दूर हो गई है तुमसे, इसलिए तुम्हें अपने मास्टर जीजे की जगह पर लगा हुआ मास्टर कैसे पसंद आ सकता है।''

शायद यही बात हो—गोपी ने अपनी टोपी उतार कर बड़े मटके पर रखी और मोढ़े पर बैठकर सोच में डूब गया।

एक वर्ष पहले कृष्ण इसी गांव में मास्टर बन कर आया था। गोपी ने तब दूसरी जमात का इम्तहान देना था। इम्तहान में कठिन प्रश्न पूछे गए तो नये मास्टर पर बड़ा गुस्सा आया था, पर फिर भी वह पास हो गया, और धीरे-धीरे वह नए मास्टर उसे अच्छे भी लगने लगे। उन्होंने कभी किसी लड़के को मारा नहीं था। रोज़ स्कूल से वापस आ कर जब गोपी दीदी की गोद में बैठकर रोटी खाता तो कच्चे आमों की चटनी के समान खाने के साथ-साथ मास्टर जी के बारे में बातें करता।

एक दिन जब लछमी गोपी को गोद में बिठा कर खीर खिला रही थी तो उसने गोपी से पूछा, ''गोपू भई, तुम्हारा मास्टर वही तो नहीं पतलून वाला, बड़े-बड़े छत्ते हैं उसके।''

''हां, हां वही तो है'' गोपी जोश से बोला, ''शहरी बाबू है छत्ते तो होंगे ही—देखा नहीं कैसे कंघा किया होता है जैसे गाय ने बछुये को चाटा हो।''

लछमी बहुत हंसी सुनकर, फिर कुछ देर बाद अपनी बात को बढ़ाते हुए बोली, ''मुझे क्या पता था कि वही है तुम्हारा मास्टर। बावली पर पानी भरने के लिए गई हुई थी मैं, दूर से ही उसे देखा, समझ गई यही होगा तुम्हारा मास्टर।''

और फिर एक दिन, जब लछमी गाय का दूध दुह रही थी, और

कभी कभी कोई धार पास बैठे हुए गोपी के मुंह में भी डाल रही थी तो अचानक ही बोली, "गोपी तुम्हारा मास्टर शौकीन बड़ा है, रोज ही देखती हूं उसे बावली पर।"

कृष्ण को अब गांव में आए हुए तीन महीने हो गए थे। एक बार गोपी और लछमी पार की पहाड़ी पर से अपनी गाय ढूंढ कर ला रहे थे कि तलाई के पास कृष्ण उनके सामने आ गया। गोपी ने हाथ जोड़ जरा झुक कर नमस्ते की। कृष्ण ने मुस्कराते हुए नमस्ते का उत्तर दिया तो अनायास लछमी भी मुस्करा दी, और फिर स्वयं ही लजाकर उसने अपना मुंह दूसरी ओर कर लिया।

उसके बाद कृष्ण ने एक बार गोपी से उसके घर के सम्बन्ध में बातें कीं, और फिर, गोपी को पता नहीं किस बात के लिए, वह एक दो बार उनके घर आया, और न जाने क्यों लछमी उस समय बहुत शरमाती-सकुचाती रही। तब अचानक ही मां ने एक दिन गोपी से कहा, "क्यों गोपी, तुम्हारी दीदी का ब्याह तुम्हारे मास्टर जी से कर दें?" सुनकर गोपी को बहुत ही खुशी हुई, झट से बोला, "जरूर कर दो मां, मास्टर जी तो बहुत ही अच्छे हैं।"

दो महीनों के बाद कृष्ण और लछमी का विवाह हो गया। लेकिन विवाह होते ही उसकी तबदीली शहर में हो गई। वह तो पहले से ही इस कोशिश में था। उसके केवल दो छोटे भाई थे। माता-पिता स्वर्ग-वास हो चुके थे। वह जब से गांव आया था, उसे अपने छोटे भाइयों की चिन्ता लगी रहती थी, जो शहर में किसी दूर के रिश्तेदार के पास रहते थे। तबदीली हो गई तो वह बहुत खुश हुआ, लछमी का एक नया जीवन ही आरम्भ नहीं हुआ, वह एक नये संसार में भी आ बसी।

लेकिन बेचारा गोपी अकेला रह गया। लछमी चली गई तो उसका

जैसे सब कुछ लुट गया। ठगा-सा रह गया वह। आज तक उसने लछमी की गोद में बैठे बिना कभी खाना नहीं खाया था। लछमी जब कौर-कौर खाना खिलाती थी तो मक्की की सूखी रोटी भी मक्खन के समान गले से फिसल जाती, और अब पानी के साथ भी रोटी निगलनी मुश्किल हो गयी।

पहले लछमी और वह दोनों एक साथ पारकी पहाड़ी से गाय को ढूंढ़ कर लाया करते थे। अब वह अकेला गाय ढूंढने के लिए जाता तो कहीं भी गाय न मिलती। विवश हो कर आखिर मां ही जाती तो गाय लाती।

गोपी को कुछ सूझता नहीं था कि वह स्कूल जाने के लिए क्योंकर तैयार हो, और स्कूल से वापस आकर किसके साथ हंसे खेले। मां दूध दुह रही होती तो वह दूर ही से बैठा देखता रहता, कच्चे दूध की धारों के लिए उसका मन छटपटाने लगता। माँ को तो सारा दिन चूल्हे-चक्की में जलना-पिसना होता था। गोपी को देख देखकर वह मन मसोस कर रह जाती। वह क्या करती ? गोपी के साथ गोपी कैसे बन जाती, उसके लिए तो लछमी बनना भी कठिन था।

माँ बुहार कर उठी तो गोपी को रोटी देने लगी। गोपी ने पहला कौर ही मुंह में डाला तो रोज की तरह आज भी किसी प्रकार निगला न गया। मां उसकी यह हालत देखकर बाहर आ गई और पल्लू से आंसू पोंछने लगी, परन्तु जल्दी ही फिर भीतर लौट आई और गोपी को समझाने लगी—"गोपी, तुम्हारे जीजा जी जो शहर में चले गए हैं तो अच्छा ही है। उन्हें यहां अपने छोटे भाइयों की चिन्ता लगी रहती थी। लछमी के लिए भी अच्छा है कि वह शहर चली गई, यहाँ गांव में क्या धरा है। कृष्ण को तो यहां संयोग ही ले आए उसके। लछमी के भाग

ऊंचे थे, पढ़ा लिखा अच्छे घर का लड़का मिल गया। किसी पक्के घर में ही तो रहती होगी वहां-वो लोग अब यहाँ जल्दी नहीं आ सकेंगे, और फिर बेटा लड़कियां तो अपने ही घरों में शोभा देती हैं।"

"तो फिर मैं अकेला ही मिल आऊं दीदी से ? वह नहीं आ सकती, मैं तो जा सकता हूं।"

मां चुप रही, और गोपी दूसरे ही दिन शहर जाने के लिए तैयार हो गया।

सफेद धुली हुई कश्ती नुमा टोपी, काला सा खद्दर का कोट, कोट के नीचे तक लटकता कुर्त्ता, टखनों से ऊंचा पाजामा और पांव में पहाड़ी जूते और कंधे पर एक छोटा-सा कनस्तर, जिसमें मां ने सौगात के तौर पर अचार डालने के लिए कच्चे आम भर दिए थे। इस प्रकार बन-संवर कर गोपी बहिन के घर जाने के लिए तैयार हुआ। मां उसे पाँच कोस पर बड़ी सड़क तक छोड़ने के लिए आई, और बस पर चढ़ा गई। गोपी का मन बस में बैठे हुए यों घबरा रहा था, जैसे चिड़िया का बच्चा पहली बार घोंसले से बाहर निकला हो।

गाड़ी शहर में पहुंची तो गोपी ने साहस बटोरा, और इधर-उधर से पूछते-पूछते वह उस मुहल्ले में आ पहुँचा, जहां उसकी दीदी रहती थी। एक घण्टा तो लग ही गया। कनस्तर के भार से उसके कंधे दर्द करने लग गये थे। पसीने में सराबोर हो चुका था वह।

जब वह दरवाजे पर पहुँचा तो कुछ कौतूहल-कुछ भयवश कितनी ही देर वह वहां चुपचाप खड़ा सोचता रहा। फिर हौले से द्वार खट-खटाया। तुरन्त ही एक उसी की अवस्था के बालक ने बाहर झांका, और गोपी को देखकर अचरज से भर गया। गोपी ने धीरे से पूछा,

"दीदी घर में है ?" वह लड़का भागकर अन्दर चला गया। कुछ ही क्षणों में लछमी ने बाहर आकर गोपी के कंधे पर से कनस्तर उतार कर उसे गले से लगा लिया। गोपी भी जी भर कर बहिन के गले मिला। भीतर आकर भी कितनी ही देर लछमी के आंसू न रुके। देर से बंधा हुआ बांध टूट गया।

रतन और शाम दोनों टुकर-टुकर गोपी की ओर देखे जा रहे थे। भाई की शादी में उन्होने गोपी को देखा था। पर वह तो गांव था, और वे खुद वहां मेहमान थे। किसी से ऐसी-वैसी बात कैसे करते। आज अपने घर में गोपी को इन कपड़ों में देखकर एक दूसरे की ओर यों देखने लगे जैसे कह रहे हों—भई हमारी भाभी तो बहुत प्यारी है, पर उसका भाई—?

लछमी ने मां की और गांव के और बहुत से लोगों की सुख-शान्ति के संवाद लिए। अपनी उन सहेलियों के बारे में भी पूछा, जिनसे रूठकर उसने बोलना ही छोड़ दिया था। गोपी सभी कुछ बताता रहा, अपने सम्बन्ध में वह कुछ न बोला, न लछमी ने ही कुछ पूछा। उसे भैया मिल चुका था, उसे दीदी।

कुछ देर बाद गोपी को चुप बैठे देखा सहसा लछमी यह कहते हुए उठ खड़ी हुई, "तू रतन और शाम के साथ खेल, मैं चाय बनाती हूँ, उनके आने का टाईम हो गया है।" दीदी के मुंह से उसे टाईम शब्द अजीब-सा लगा। वह आश्चर्य से उसे देखने लगा। तभी उसने रतन और शाम को अपनी ओर टुकर-टुकर देखते हुए पाया। रतन उसी की अवस्था का था, और शाम कुछ छोटा। गोपी का जी चाहा उनके साथ कोई बात करे। वे दोनों भी यही सोच रहे थे। आखिर रतन ने ही पूछा, "तुम्हें लिडो खेलना आता है?"

गोपी को लिडो का क्या पता था। सोचा कोई खेल होगा, "नहीं मुझे नहीं आता।" उसने कहा। रतन और शाम दोनों के लिए आश्चर्यजनक बात थी कि इसे लिडो खेलना भी नहीं आता।

"तुम क्या खेलते हो ?"

"गिल्ली डंडा" गोपी ने ज़रा ऊंची आवाज़ में कहा, क्योंकि गांव में वह सब लड़कों से अच्छा गिल्ली डंडा खेलता था।

"पर हमें तो भाभी गिल्ली डंडा नहीं खेलने देती।" शाम ने कहा।

दीदी इन्हें गिल्ली डंडा नहीं खेलने देती ? गोपी के लिए नई सूचना थी, सोचने लगा मुझे तो दीदी ने कभी मना नहीं किया था गिल्ली डंडा खेलने से। उसे अचानक खयाल आया कि उसकी दीदी जरूर कुछ बदल गई हैं। गोपी को मौन देख रतन और शाम लिडो खेलने लग गये। उन्होंने उसे कहा कि वह देखता रहे।

"गोपी आया है क्या ?" जीजा जी की आवाज़ सुनकर गोपी उठ खड़ा हुआ, और हाथ जोड़, ज़रा झुक कर नमस्ते की। कृष्ण ने आगे आकर उसे थपकी दी, और पूछा, "अकेले आये ?"

"जी हां, मां बड़ी सड़क तक आकर बस पर चढ़ा गई थी।"

"पढ़ाई तो करते हो न ठीक से ?"

गोपी ने गर्दन हिलाई और मुस्करा कर चुप हो रहा।

कुछ ही समय बाद लछमी ट्रे में चाय ले आई।

"बाजार से कुछ मंगवा लेना था।" कृष्ण ने कहा।

"सुबह की मिठाई बची हुई थी।" लछमी ने ट्रे को मेज़ पर रखते हुए उत्तर दिया। कृष्ण ने प्यालियों में चाय डाल, एक प्याली गोपी की ओर सरकायी। दीदी की ओर देखते हुए उसने एक घूंट चाय भरा

लेकिन घूंट क्या भरा सारा मुंह ही जल गया। प्याली हाथ से छूटी और नीचे जा गिरी, और टुकड़ों में बंट गई। कुछ चाय कोट पर भी गिरी। बेचारा हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ।

"कोई बात नहीं।" कृष्ण ने गोपी को थामते हुए कहा। लेकिन शाम और रतन की हंसी रोके न रुक रही थी। मुंह पर हाथ रखकर वो हंसी को दबाने का यत्न करने लगे। गोपी ने दीदी की ओर देखा। उसके मुंह पर उसके मन का रोष दीदी से छिपा न रहा। वह रुआंसा-सा हो गया। दूसरी प्याली में उसे चाय तो मिली, पर जैसे चाय में शकर ही न रह गई हो। उसे यों महसूस हो रहा था, जैसे मंत्रवश किसी और ही संसार में आ गया है, जहां वह आना चाहता था, वह यह संसार नहीं।

सांझ को लछमी ने गोपी से कहा कि वह रतन और शाम के साथ ज़रा बाहर खेल आये।

'मैं नहीं जाऊंगा।" गोपी ने कहा।

'कुछ देर खेल आ, तब तक मैं खाना बना लूंगी।" लछमी ने कहा और रसोई में चली गई। गोपी से यह उपेक्षा सही न जा रही थी। वह तो चाहता था शाम और रतन के जाने के बाद वह खाना बनाती हुई दीदी के पास बैठ कर उससे बातें करे, पर उसे बाहर जाना पड़ा।

घर के पास ही एक छोटा सा बाग था। तीनों वहां पहुँचे। रतन और शाम के दोस्त पहले से ही वहां जमा थे। कबड्डी खेलने के लिए दो लड़कों ने अपने साथी चुनने शुरू किए। सभी लड़के बंट गये, केवल गोपी रह गया। उसकी टोपी, कोट और पहाड़ी जूते देख कर ही उसे किसी ने अपना साथी न चुना, उसे आखिर रतन ने अपनी ओर ले

लिया। कबड्डी शुरू हुई। गोपी ने भी टोपी, कोट और जूते उतार कर एक ओर रख दिये। 'कौडी', कौडी' करते हुए सब इधर-उधर आ-जाकर दांव-पेंच मारने लगे। खेल तेज हुआ। पर गोपी तो बुरा, फंस गया। दूसरे लड़कों से वह कुछ तगड़ा था, बस यही देख शेष सब लड़के उस पर पिल पड़े। गोपी ने भी क्या मजाल जो किसी को हाथ भी लगाने दिया। लड़के और भी चिढ़े। एक ने किसी प्रकार कैंची-दाव मार ही लिया बस फिर क्या था, सभी झपट पड़े उस पर। उसे ऐसा रगड़ा कि सारा शरीर ही छिल गया बेचारे का। नाक से खून भी बहने लगा। रुलाई आ गई। पर वहां कौन था जिसे दिखा कर वह रोता। सभी लड़के भाग गये थे, रतन और शाम भी। वह अपनी टोपी, कोट और जूते उठा कर घर को चला। दीदी तो शायद रसोई में ही थी। रतन और शाम दोनों अपनी अपनी पुस्तकें लेकर आंगन में एक ओर बैठ गए थे। गोपी को आते देख उन्होंने अपने मुंह और भी पुस्तकों में छिपा लिये।

तभी लछमी बाहर निकली तो गोपी का हुलिया देखकर घबरा गई, "यह क्या हुआ ?"

"लग गई।"

"कैसे ?"

"खेलते हुए।"

"देखकर नहीं खेला जाता था क्या ?" लछमी ने उसे बांह से पकड़ते हुए कहा, "चल आ तुम्हें टिक्चर आईडीन लगा दूं।"

गोपी ने बड़ी कठिनाई से आंसू रोके हुए थे। उसे याद आया कि गांव में कभी चोट लग जाती थी तो दीदी कोई भी बात करने से पहले

सेंक देना शुरू करती थी, तेल लगाती थी, और यदि मां पूछती भी थी कि "क्या हुआ" तो कोई बहाना बना देती थी, जिससे उसे झिड़क न खानी पड़े।

वह अप्रतिभ सा मुंह फुलाये खड़ा रहा।

रात को जब कृष्ण ट्यूशन पढ़ा कर लौटा तो सभी एक साथ खाना खाने बैठे। बातों-बातों में जब उसे पता चला कि बाग में गोपी की दुर्गति हो गई तो उसने रतन और शाम दोनों के कान उमेठे कि उन्होंने गोपी को क्यों पिटवाया। बस इसी बात पर शाम रोने लगा। लछमी ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया, और अपने हाथों उसे खाना खिलाने लगी। गोपी ने देखा तो मन मसोस कर रह गया। सांस घुटने लगा उस का। दीदी की गोद में तो वह स्वयं बैठने के लिए आया था। उससे खाना भी ठीक ढंग से नहीं खाया गया। कृष्ण ने देखा गोपी कुछ खा नहीं रहा तो लछमी बोली, 'बेचारे को लस्सी नहीं मिली, स्वाद क्या आया होगा।'

गोपी के लिए लछमी ने खाट अपनी खाट के साथ ही बिछाई और सोने से पहले फिर गाँव की बात छेड़ी। पर गोपी का मन बातों में नहीं था। लछमी ने समझा कि उसे नींद आ रही है। "सो जाओ" कह कर उसने कृष्ण की ओर करवट बदल ली। इतने में शाम और रतन-जो एक ही खाट पर सो रहे थे, किसी बात पर लड़ पड़े। "भाभी शाम मुझे लातें मार रहा है" कहते-कहते रतन ने जो ज़ोर से शाम को लात जमाई तो शाम यों चिल्लाया जैसे बिच्छू ने डंक लगाया हो। लछमी झट से उठ खड़ी हुई, और शाम को उठाकर अपने बिस्तर पर ले आई। उसे चुप कराया और फिर उसे अपने साथ ही सो जाने के लिए कहने लगी। गोपी चुपचाप लेटा हुआ सब देख रहा था। उसने

सोच रखा था कि शाम और रतन जब सो जायेंगे तो वह खुद ही दीदी के पास चला जायगा पर अब तो दीदी ने शाम को अपने साथ सुला लिया--यह क्या हो गया है दीदी को ? अनायास उसे मां की याद आ गई। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। रोते रौते ही उसे न जाने कब नींद आ गई।

सुबह वह देर तक सोता रहा।

लछमी ने उसे हिला कर जगाया तो वह ऐसे चौंककर उठा मानो अभी अभी कोई भयानक सपना देख रहा था। लछमी ने ध्यान से उस के चेहरे की ओर देखा वह उसे कुछ अस्वस्थ-सा दिखाई दिया।

"क्या हुआ है गोपी तुम्हें ?"

"मैं घर जाऊंगा–मां के पास।"

"अरे अभी कल ही तो आए हो ?" लछमी ने कहा, "कुछ दिन तो रहोगे ही न ?"

"नहीं मैं घर जाना चाहता हूं" गोपी ने जैसे ज़िद पकड़ ली।

लछमी उसके स्वर की जड़ता और चेहरे की स्थिरता देख कर अचरज से भरी जा रहा थी। कृष्ण को पता चला तो वह भी बड़ा हैरान हुआ। आखिर ऐसी भी क्या हुई बात। कुछ दिन तो रहता ही। लेकिन गोपो ने मानो किसी की न सुनने की कस्म खा ली थी। लछमी तो कुछ भी नहीं समझ पा रही थी। वह दुःखी हो गई। बहुत कहा-सुनी करने पर भी जब गोपी न माना तो फैसला हुआ कि आज स्कूल जाकर कृष्ण एक दिन की छुट्टी ले आएगा, और कल ही सुबह गोपी को साथ-लेकर गांव छोड़ आएगा। शाम तक वापस शहर भी आ जाएगा।

दूसरे रिन सुबह की गाड़ी से जाना था। जब गोपी जाने के लिए तैयार हो गया तो लछमी के आंसू थे कि थम ही न रहे थे। बार-बार पोंछते हुए उसका सारा पल्लू भीग गया। गोपी को उसने यों गले से लगाया कि गोपी का जी चाहा वह यहीं रह पड़े। दीदी को यों रोते देख उसे भीतर ही भीतर कोई वेधता चला जा रहा था। काश, वह यहीं रह जाता हमेशा के लिए। हमेशा के लिए दीदी उसे यों ही गले से लगाए रखती। लेकिन अब वह कैसे यहाँ रहता। जीजा जी उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह दीदी को छोड़े और बाहर निकले। गाड़ी का समय हुआ जा रहा था। गोपी जब घर से बाहर निकला तो शाम और रतन भी महसूस कर रहे थे, यदि वह कुछ दिन और यहाँ रह जाता तो अच्छी बात थी।

अपना सब कुछ वहीं छोड़ गोपी वहाँ से चला आया। लेकिन गांव आकर वह फिर वैसे ही था जैसे बरसात के बाद कोई बरसाती नाला।

गांव आये हुए उसे काफी दिन हो गए थे। मां ने उससे अनेक बार पूछा, "तू इतनी जल्दी क्यों लौट आया।" लेकिन गोपी कुछ न बता पाया। कहता भी क्या? न जाने क्यों अब दीदी के बारे में कोई बात ही न कर पाता था वह। मां ने अनुभव किया कि वह वैसे भी बहुत चुप-चुप सा रहने लगा है। लेकिन उसे वह कुछ बताता तब न। स्कूल से आकर ज्यादा समय वह अकेले घूमने में बिता देता। कभी बावली पर, कभी पार की पहाड़ी पर, कभी इधर, कभी उधर। अजीब अनमना सा हो गया था वह।

उस संध्या को जब मां दूध दुह रही थी, देखा गोपी चुपके से पीछे आ खड़ा हुआ है। मां ने उसकी ओर देखा, फिर दूध दुहने लगीं, फिर देखा तो वह वैसे ही खड़ा था। पूछा, "क्या बात है गोपी?"

गोपी ने कहा, "मां, अब जब दीदी यहां आएगी तो क्या दूध दुह कर दिया करेगी वह तुम्हें।"

"क्यों नहीं।" मां ने दूध की धारें निकालते हुए कहा।

"वह गाय को चराने भी ले जाया करेगी ?"

"जायेगी क्यों नहीं भला ?"

"वह बावली से पानी भी भर कर लायेगी ?"

"लायेगी नहीं तो फिर क्या करेगी वह यहां ?"

तब गोपी बिलकुल मां के समीप आ खड़ा हुआ। कुछ देर चुप रहा. फिर भरे भरे स्वरों में बोला, "मां दीदी कब आयेगी ?"

मां ने दूध दुहना बंद कर गोपी की ओर देखा, हैरान होकर कहा, "अरे अभी तो तुम दीदी से मिलकर आए हो ?"

"वहां मिलकर आया हूँ माँ, वह यहां कब आएगी ?"

मां कुछ भी नहीं समझी—कुछ भी नहीं, और गोपी रुआंसा हो गया था कि मां को समझाए तो कैसे ?

यह पर्वत मेरे नहीं

राजां को नींद नहीं ग्रा रही थी।

कोठरी में उस का दम घुट रहा था। बाहर शायद वर्फ भी पड़ी थी, परन्तु इतनी सर्दी में भी उस के माथे पर पसीने के मोती उभरते ग्रा रहे थे। मन में जैसे ग्राग सुलग रही थी, गला सूख रहा था, जोरों की प्यास लगी।

परन्तु वह उठ कर बाहिर कैसे ग्राये ?

बाहर बड़े कमरे में से हो कर जाना पड़ता था, ग्रौर वहां उस का बापू ग्रौर साथ ही मंहतराम उस का घर वाला सोये हुये थे।

ग्राखिर उस से रहा नहीं गया। धीरे से उठी, दबे पांव दरवाजे के समीप ग्राई, ग्रौर सतर्क हो कर बहुत धीमे से दरवाजा खोलने लगी, ताकि कहीं ज़ोर की ग्राहट न हो।

बड़े कमरे में इतना ग्रंधेरा था कि वहां कुछ भी दिखाई नहीं दे

रहा था। परन्तु फिर भी उस के मन की धड़कन तेज़ हो गई। उसे पता था कि उस का बापू और उस का पति वहां सोये हुये हैं। उस ने अपने हाथों से दोनों खाटों पर खेस बिछाए थे।

शीघ्रता से वह बड़े कमरे में से निकल कर आंगन में आ गई। धड़े का पानी पाले के समान ठंडा था। परन्तु बड़ा कटोरा पानी पीने से कहीं प्यास बुझी। पानी पीं कर घुटनों पर मुंह टिका वह कितना ही देर वहीं बैठी रही।

उस समय वर्फ पड़ने के लक्षण तो दिखाई नहीं दे रहे थे, लेकिन हवा बर्फ से भी अधिक सर्द थी। फिर वह वहाँ से उठी और आंगन की दिवाल के सहारे आ खड़ी हुई।

पूर्णिमा की रात थी। सामने पर्वत के पीछे से चाँद धीरे २ उग रहा था। उस ने चारों ओर देखा। सारी घाटी पर चांदनी फैल गई थी। अनायास उस की आंखों में आंसू आ गए। उस ने सोचा यदि उस का गोरा शरीर चांदी के समान पिघल कर इस चांदनी में विलीन हो जाए और फिर इस पर्वत के वृक्ष २ में, पत्ते २ और कण २ के गले लग जाए तो कितना अच्छा हो, तब मंहतराम उसे कल डोली मैं बैठा कर यहां से दूर—मैदानों की ओर अपने गांव में कैसे ले जाएगा।

आंसू उस के गालों पर फिसलने लगे। बिना मां की बेटी राजां को इस घाटी ने ही ममता दी थी। उस का बापू दूर निचली पनचक्की का मालिक था। उसे सारा दिन वहां से अवकाश न मिलता था। अकेली राजां गाय और बकरी को चराते हुये टीले-पर्वतों पर जा चढ़ती। ऊंचे स्वरों में गीत गाने लगती। इन

पर्वतों का एक २ वृक्ष उस का चिर-परिचित था। चोटियों पर फूल के बिछौने उस की देह की सुगन्ध पा कर झूमते थे।

घाटी का एक २ जल स्तोत्र उस के साथ बातें करता था। जीवन के एकान्त से जब वह घबरा जाती तो यही स्तोत्र उस के संगी सहोदर बन कर उस के एकान्त को धो डालते और उस की उदासी को बहा कर ले जाते थे।

इन्हीं पर्वतों की गोद में परवरिश पा कर वह इतनी बड़ी हुई थी। यहीं उस ने बचपन की सीमाओं को लांघ कर यौवन में पदार्पण किया था। पर उस को क्या पता था कि यौवन ही उस का बैरी निकलेगा। चार दिन हुए बापू ने उस का ब्याह कर दिया। आज गौना भी हो गया। कल हमेशा के लिये उसे मंहतराम के साथ चले जाना है। ये पर्वत—ये घाटी—ये स्तोत्र इन सब का वियोग कल वह अपने आँचल के साथ बांध कर ले जाएगी। और इन की यादों को हमेशा के लिए अपने हृदय के साथ लगा कर रक्खेगी। इन्हीं यादों को अपने जीवन का आसरा समझेगी।

यह सब सोचते २ जैसे उस की सोचें भी भारी हो गईं। आखें स्तोत्र बन गईं। और वह फफक २ कर रो पड़ी। उसे यों अनुभव होने लगा जैसे वह मूर्च्छित होती जा रही है। दिवाल को उस ने ज़ोर से थाम लिया। परन्तु अनायास आंखों के आगे अंधेरा छा गया। आखिर उसे पुन: वहीं बैठ जाना पड़ा।

चांद काफी ऊपर आ चुका था। घाटी पर चांदनी की चांदी और भी अधिक फैल गई थी। चील के वृक्षों में से निकलती हवा की सरसराहट सांप की फुफकार सी लग रही थी। दूर नीचे बहते हुए

नाले का शोर बढ़ रहा था और राजां—इन पर्वतों की बेटी राजां, वैसे ही घुटनों में सिर टिका रोती रही।

बहुत समयोपरान्त जब वह फिर अपनी कोठरी में गई तो बड़े कमरे में उस का बापू और मंहतराम पूर्ववत सोए हुए थे।

दूसरे दिन बापू ने उसे विदा करते हुए कहा, "बेटी, मैं तुम्हें जल्दी बुला लूंगा।" परन्तु उस ने बापू की आवाज़ जैसे सुनी ही नहीं।

घर आंगन से निकल कर राजां की डोली जब नीचे घाटी में पहुँची तो न जाने कहां से एक ममोला आ कर डोली की फुंगी पर बैठ गया और विचित्र स्वरों में चहकने लगा। भीतर बैठे हुए राजां का हृदय जैसे उछल कर बाहर आने लगा। घर के पीछे वाले झरने के साथ ही ममोलों का एक जोड़ा रहता था। यह ममोले आज राजां को वहां न पा कर विदा हो रही डोली पर आ बैठे। राजां का जी चाहा कि डोली का पर्दा सरका कर वह ममोले को अन्तिम बार देख ले, परन्तु बाहर मंहतराम देखते तो ?

घाटी से गुजर कर डोली जब ऊपर चोटी पर पहुंची तो ममोला अपनी आवाज़ में न जाने क्या कहता हुआ उड़ गया।

इसी प्रकार वृक्षों में से गुज़रते, पहाड़ों को पार करते राजां की डोली उसी रोज़ संध्या के समय ससुराल के गाँव में आ पहुंची। मोटे २ कपड़ों में लिपटी, छोटी सी कोठरी में उसे देखने के लिए आई हुई स्त्रीयों के बीच घिरी हुई राजां का दम घुटने लगा। छाती भारी हो गई और गला सूखने लगा। वह किसी से इतना भी नहीं कह पाई कि उसे प्यास लगी है।

रात को जब मंहतराम ने उस का घुंघट उठाया तो सहसा न जाने क्यों उस की आंखों से आंसू गिरने लगे। मंहतराम ने आगे बढ़ कर आंसू पोंछ डाले और छाती से लगा लिया। उस छाती में पता नहीं प्यार की कैसी तपन थी कि राजां के मन का बोझ मानों बर्फ के समान घुलने लगा और आंसू बन कर बाहर आने लगा। आखिर उस का मन हल्का हुआ। आंसूओं की बाढ़ थम गई। मंहतराम ने कहा, "रोने से क्या लाभ? मैं तुम्हें शीघ्र बापू के पास छोड़ आऊंगा।"

महंतराम की आवाज़ में कुछ ऐसी स्निग्धता थी कि उस में तनिक भी झूठ का आभास न मिला। उसे विश्वास हो गया कि वह उसे फिर उस के दूर पहाड़ों पर बसे गांव में छोड़ आएगा। महंतराम उसे देवताओं के समान दिखाई देने लगा।

वैसे भी महंतराम बहुत ही सुन्दर और स्वस्थ युवक था। खड़ा हो तो राजां को गर्दन उठा कर देखना पड़े। छोटे २ घुंघराले बाल, कानों में मुर्कियां पड़ी हुई और गले में तावीज़। राजां का जी चाहा कि वह महंतराम की छाती पर से कभी भी सिर न उठाए। इस परदेश में अजनबी लोगों के बीच वही तो उस का सहारा था और महंतराम सोच रहा था कि राजां कितनी सुन्दर कितनी भोली—नादान।

दो तीन दिनों के बाद महंतराम ने राजां को बतलाया कि उस के बापू का संदेश आया है कि वह रविवार को यहां आ कर ले जाएगा। यह सुन कर राजां के हर्ष का पारावार न रहा, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपना मन कुछ बदला हुआ प्रतीत हुआ। उस की समझ में न

आया कि क्या बात है। उसी रात जब वह महंतराम की गोद में सिर टिकाए लेटी थी तो महंतराम ने पूछा "तुझे अपना गांव बहुत प्यारा लगता है।" "हां" राजां ने ससंकोच शरमाते हुए उत्तर दिया।

"ऐसा क्या है वहां ? क्या बापू अकेला है इस लिए ?"

राजां सोचने लगी कि वह क्या उत्तर दे। उस के बापू ने उसे कभी गले नहीं लगाया। परन्तु यह भी कैसे कहे उसी घाटी, उन्हीं पर्वतों, उन्हीं स्तोत्रों और वृक्षों में उस के प्राण बसे हुए हैं। उसे कैसे बताए कि उस का सब कुछ वहीं है।

महंतराम ने उस से पूछा, "उस बियाबान जंगल में क्या है जो तुम मुझे भी अकेला छोड़ जाना चाहती हो।"

"नहीं, तुम से दूर नहीं जाना चाहती।" सहसा राजां के मुंह से निकल पड़ा। महंतराम उस की बात सुन कर बहुत खुश हुआ। लेकिन बोला कुछ नहीं।

आखिर राजां ने ही कहा, "मैं पहले कभी उस गांव से बाहर नहीं गई थी। मुझे लगता है कि मेरा पहला सब कुछ वहीं रह गया। वह टीले वह पर्वत वह चीढ़ देवदार के वह वृक्ष वे सब मुझे अच्छे लगते थे, बड़े प्यारे।" यह सब कहते हुए राजां जैसे खो सी गई— बचपन के साकार रूप में। स्वतः उस की आंखें बन्द हो गई। महंतराम राजां की यह बातें सुन कर आश्चर्य चकित रह गया। उस ने ऐसी बातें कभी नहीं सुनी थीं। यह अल्हड़ सी पहाड़ी लड़की क्या कह रही है ?

बापू के आने में दो दिन शेष थे। राजां को अब यों लग रहा था जैसे वह महंतराम के बिना न रह सकेगी।

उस ने कहा "तुम मेरे साथ नहीं जा सकोगे ?" महंतराम यह सुन कर हंस पड़ा और बोला, "तुम बड़ी भोली हो ?"

"क्यों ?"

"मैं तुम्हारे साथ कैसे जा सकता हूँ ?"

"क्यों ?"

"मुझे बड़े शहर में जाना है।"

"किस लिए।"

"नौकरी करने के लिए।"

राजां स्तब्ध रह गई। उसे जीवन में पहली बार उसी का स्नेह मिला था। डर लगा कहीं मंहतराम रूठ न गया हो।

"यदि तुम चाहते हो कि मैं बापू के साथ न जाऊं तो नहीं जाती।"

"नहीं, नहीं तुम्हें तो जाना ही पड़ेगा, तुम्हारा जाना तो जरूरी है।"

"क्यों ?" राजां किसी आशंका से भयभीत थी।

महंतराम कुछ क्षणों के लिए सोच में डूबा रहा फिर धीमे से स्वरों में बोला, "तुम्हें किसी बात का भी पता नहीं ?"

"नहीं।"

"तुम्हारे लिए मैंने तुम्हारे बापू को पांच सौ रुपये दिये थे। तीन सौ तो मेरे पास थे। दो सौ उधार लेने पड़े। यह उधार चुकाने के लिए मुझे बड़े शहर जाना पड़ेगा। वहां एक दो वर्ष कहीं नौकरी करनी पड़ेगी। तुम्हारे बापू को तुम्हें ले जाने का अधिकार तो नहीं है। पर यहां तुम उदास हो जाओगी। इस लिए जब तक मैं न आऊं तुम बापू के पास ही रहो।"

इतना कहने के बाद उस ने राजां की ओर देखा। उसे यों लगा जैसे राजां के प्राण ही निकल गए हो। मुंह का रंग काला पड़ गया। महंतराम को भय लगा। उस ने राजां का कन्धा झंझोड़ा। राजां ने पत्थराई नज़रों से उस की ओर देखा और यहां खड़ी थी वहीं पर बैठ गई।

रविवार को बापू आया तो बहुत कहने सुनने के बाद भी राजां उस के साथ न गई।

और जब महंतराम शहर जाने लगा तो राजां ने कहा, "तुम मेरे ही लिए मुझ से दूर जा रहे हो, इस बात के लिए मुझे क्षमा करो। वह पर्वत मेरे नहीं जिन्होंने मुझे बेच दिया। मैं यहां रह कर तुम्हारी राह देखूंगी, जब तक तुम लौट नहीं आओगे।"

उत्तराधिकारी

दूर ऊपर अब मंगू को जगतराम का कच्चा, मिट्टी का बना हुआ मकान नज़र आने लगा था। अपना लक्ष्य-स्थान सामने देख जैसे निश्चितता सी आई। वह दम लेने के लिए एक चीड़ के पेड़ के नीचे बैठ गया।

वैसे तो वह बैठे २ ही यहां तक पहुँचा है। दस वर्षों पहले जब उस के हाथों-पांवों की अंगुलियों ने रिस २ कर झड़ना शुरू किया था, तो वह यों बैठा कि दुबारा उठ ही न सका। कहीं जाना-आना भी घिसटते २ होता। कोढ़का रोग ही कुछ ऐसा होता है।

इन पहाड़ों में उपदंश पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है और विभिन्न शक्लों में प्रकट होता है। मंगू के शरीर में भी बचपन से ही इस रोग के लक्षण मौजूद थे। परन्तु पच्चीस वर्ष की उम्र में इस रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया। लोगों ने कहा और वह स्वयं भी यही कहता आ रहा है कि किसी ने कुछ जादू-टोना करके कुछ खिला दिया

है, लेकिन कहने को सभी ऐसा ही कहते हैं। पिछले दस वर्षों में हाथों और पांवों की सारी अंगुलियां झड़ चुकी हैं, केवल ठूंठ रह गये हैं। घाव हर समय रिसते रहते हैं। रिसते हुए घावों के साथ इतनी दूर का सफर उस ने पहली बार किया है—पंद्रह मील का पहाड़ी सफर। कभी चढ़ाई, कभी उतराई। घिसटता २ मार्ग के पत्थरों कंकरों को घावों से चिह्नित करता वह किसी न किसी तरह यहां तक पहुँच ही गया है। जगतराम उसे घर मिल जायेगा, उसे पूरी आशा है।

जगतराम को वह बहुत पहले से जानता है। इन सुदूर के पहाड़ों में कोसों की दूरी पर घर बने होते हैं, किन्तु लोग एक दूसरे को यों जानते हैं जैसे एक ही आंगन के हों। यदि मंगू जगतराम को जानता है, तो जगतराम भी मंगू को भली भान्ति पहचानता है।

मंगू जब दुर्गम यात्रा का अंतिम चरण भी चढ़ आया, तो उस ने देखा कि जगतराम बरामदे में ही बैठा हुक्का पी रहा है। आंखें नशे से आरक्त थीं। सभी जानते हैं कि जगतराम जैसी शराब सारे इलाके में कोई नहीं निकालता।

मंगू को दूर ही से देख जगतराम उस के आने का अभिप्राय समझ गया। मंगू को भी यह अंदाजा लगाते देर न हुई कि जगतराम से सीधे बात करनी होगी, हेर फेर से यहां काम नहीं चलेगा।

जब मंगू ने वहाँ पहुँचते ही अपने आने का प्रयोजन बता दिया तो जगतराम ने कहा, 'मंगू, यह तो मैं मानता हूं कि तुम्हारी गांठ में पांच सौ नकद हैं, लेकिन यह बताओ कि तुम्हें इस उम्र में, इस हालत में ब्याह करने की कैसे सूझी ?"

"क्या करूं जगतू," मंगू ने उदासी-भरा दीर्घ श्वास लेते हुए कहा, "इतनी बड़ी खेती है मेरी कि संभाले संभलती नहीं। ज़मीन का कितना बड़ा टुकड़ा है। बुरे लोगों की नज़र है उस पर। मैं ठहरा लंगड़ा-लूला। एक औरत हो जाये तो सब संभाल लेगी।"

"लेकिन इस प्रकार तो यह समस्या तुम बहुत पहले भी सुलझा सकते थे।"

"तब पांच सौ कहाँ से लाता! ज़मीन चाहे बहुत है, पर उस से बचता ही क्या है? और फिर तुम्हारी बेटी भी तो अभी जवान हुई है। बहुत पहले से मैंने मन में ऐसा सोच रखा था।"

मंगू केवल एक ही बात उस से नहीं कह सका कि तुम्हारे सिवा और कौन मुझे अपनी कन्या देगा। न कहने पर भी मंगू जानता था कि जगतराम इस बात को समझता है। यह बात सच भी थी।

उसी शाम जब मंगू घिसटते २ लौट रहा था, तो नये उत्साह से प्रफुल्लित था।

आस-पास कुछ चर्चा हुई तो सही, परन्तु इस इलाके में यह कोई ऐसी बात न थी कि लोग बाग अपना काम छोड़ कर मंगू या जगतराम की निंदा करते। कई लोग तो यह समझते ही थे कि मंगू को एक स्त्री की आवश्यकता थी, जो उस का सारा काम-काज संभालती।

लोग जगतराम को भी जानते थे कि लड़की के जन्म पर वह कितना खुश हुआ था। गांव में हर घर में उस ने शराब की सौगात भेजी थी—फूल की शराब। आज पांच सौ नकद पा कर उस के जीवन का चिरवांछित सपना पूरा हुआ है। न जाने क्या करेगा वह इन रुपयों का!

पारो को तो जैसा उस के बापू ने कहा, उस ने वैसा ही किया। उस के चेतन-अचेतन में हर समय बचपन की एक घटना साकार रहती थी। एक बार जब उस ने अपने बापू का कहा नहीं माना था, तो वह उसे उठा कर पहाड़ की चोटी पर से फैंकने लगा था। फिर न जाने क्या सोच कर वह रुक गया था। आज पारो की समझ में आ गया कि तब उस ने क्यों उसे नहीं फैंका था। अपने घर में भी वह काम ही करती रहती थी। वह जानती थी, यहां—इस कोढ़ी के पास रह कर भी उसे काम ही करना पड़ेगा। और तो यह क्या करेगा। लेकिन यह जानते हुए भी कभी २ वह किसी भयानक कल्पना से कांप २ जाती थी।

मंगू बहुत खुश था। पारो चुपचाप, जैसा वह कहता, काम कर देती। घर, खेती, बैल, गाय, बकरी सब उस ने संभाल लिये। समयानुसार उस के हुक्के में तम्बाकू भी भर देती। वह बैठा २ पीता रहता। पारो को देख २ कर ही उसे अलौकिक आनन्द का भोग मिल जाता।

फिर अचानक ही मंगू को एक दुश्चिंतता ने घेर लिया। पारो के सुडौल-सुन्दर शरीर को देख पहले उसे जितनी प्रसन्नता होती थी, अब उसी मात्रा में चिन्ता में वृद्धि होने लगी। चिन्ता यहां तक बढ़ गई कि हुक्का भी छूट गया। पारो भी उस की व्यग्रता को भांपने लगी, परन्तु मंगू के बिचारों तक वह पर नहीं मार सकती थी।

मंगू ने निर्णय करने में अधिक दिन नहीं लगाये। उस ने सोच लिया कि मोहन ही उस की समस्या का समाधान प्रमाणित हो सकता है।

"तुम मोहन को जानती हो ?" उस ने पारो से पूछा।

"हां, एक बार यहां आया था वह।" पारो की स्मृति में मोहन की आकृति सजीव थी।

"मैं तो इतनी दूर उस के पास जा नहीं सकूंगा, उस से कहना कि शाम को यहां आए।"

"अच्छा," कह कर पारो चली गई। पीछे से उसे देखते हुए मंगू ने एक आह भरी। पारो के अपार सौंदर्य के साथ वह अपने कोढ़ का सामंजस्य कैसे बिठाता ?

मोहन बहुत दूर के रिश्ते में मंगू का भाई जैसे है। गरीब आदमी है। ज़मीन के नाम पर एक परती-खंड है उस के पास, जिस में मुश्किल से इतनी मक्की होती हैं कि पेट का ईंधन पूरा हो। कई बार उसे दूसरों की ज़मीनों में काम करना पड़ता है कि रोटी चल सके। उम्र तीस के लगभग हो चुकी है, लेकिन विवाह नहीं हुआ। यहां विवाह या तो अपने परिवार की लड़की को बदले में देकर होता है या पैसा दे कर। दोनों ओर से वह असमर्थ है।

मंगू मोहन को बहुत हीन समझता था। उस के प्रति मंगू को एक आशंका भी थी। आशंका सत्य भी हो सकती थी। मंगू और मोहन दोनों अपने २ परिवार में अकेले थे। वंश एक ही था दोनों का। मंगू जानता था कि उसे निःसंतान ही मरना है, और मोहन भले ही उस का बहुत दूर का सम्बन्धी है, परन्तु उस के मरने के बाद उस की सारी ज़मीन मोहन को ही मिलेगी। वह इस बिचार को जितनी दूर झटकना चाहता, वह भूत के समान उतनी ही और ज्यादा

उस के मस्तिष्क पर हावी हो जाता। तंग आ कर उस ने मोहन को बुलाना भी छोड़ दिया था। बुलाता भी, तो गालियां ही देता—मोटी २ गालियां।

मोहन ने इतनी दूर की कभी नहीं सोची थी कि मंगू की ज़मीन पर कभी उस का अधिकार हो सकता है, लेकिन वह मंगू के व्यवहार से अत्यन्त दुखी था। वह जानता था, यदि वह कोढ़ी हो जाये, तो मंगू की खुशी का पारावार न रहेगा। परन्तु वह अपने स्वस्थ, सुन्दर शरीर के साथ दारिद्रय में भी बड़े सुख से रहता था। कभी २ कुंवारेपन के एकान्त की नागिनें उसे डस भी लेतीं, वह आहें भी भरता। इसी लिए अब उस ने अलगोजों (बांसुरियों का जोड़ा) को अपना एकान्त सखा बना लिया था।

पारो के कानों में दूर से ही अलगोजों की स्वर-लहरीका रस घुला। क्षण भर के लिए वह पगडण्डी पर रुक गई। वह इतनी सुन्दर थी कि वहां खड़े २ जंगली गुलाब के पौधे सी लग रही थी। कितनी ही देर वह उसी प्रकार वहां स्वर-लहरी में खोई सी खड़ी रही। अलगोजे बजने बंद हुए तो सहसा चौंक कर आगे बढ़ चली।

मोहन ने दूर से ही पारो को देखा, तो अचरज से भर उठा। कुछ सोच नहीं पाया कि वह यहां क्यों आ रही है। मोहन की दृष्टि को अपलक अपनी ओर देख कर पारो कुछ सकुचा गई। लड़कियों का विवाह होता है तो उन का काम चौबीसों घण्टे सकुचाना लजाना हो जाता है, किन्तु उसे आज विवाह के दो महीने बाद पहली बार लजाने-शरमाने का अवसर प्राप्त हुआ।

मोहन ने जरा आगे बढ़ कर कहा, "क्यों, भाभी, तुम यहां कैसे?"

पारो सहजता को बनाये रखने का असफल प्रयत्न करते हुए बोली "तुम्हारे भाई ने तुम्हें बुलाया है।" मोहन के आश्चर्य की सीमा न रही।

पारो उसे अचरज में भर पल भर निहारती रही, फिर मुड़ने लगी, तो मोहन ने पुलक भरे लहजे में कहा, "भाभी, तुम्हारा मैं ही एक देवर हूं, तुम्हे पता है?"

"हां," कहते हुए पारो के होठों पर एक ऐसी हंसी उभरी, जिस ने मोहन को पत्थर की शिला सा बना दिया।

उसी शाम मोहन मंगू के पास पहुँचा।

मगू ने कहा, "मोहन, अब के वर्ष मैं किसी को अपने खेतों में मज़दूरी पर नहीं लगाऊंगा, क्योंकि पारो ने सारा काम संभाल लिया है। फिर भी, अकेले उस के लिए काम करना मुश्किल है। तुम्हारे खेतों का होना न होना एक बराबर है। मेरे खेत भी तुम्हारे ही हैं। इस वर्ष तुम मेरे यहाँ ही काम करो। हल तुम चला देना, शेष सारा काम पारो संभाल लेगी।"

मोहन को निधियां मिल गई। मंगू से सम्बन्ध भी ठीक हो गये, पारो के साथ काम करने का अवसर भी मिल गया। न जाने मन ही मन वह क्यों पारो को पूजने लगा था।

अनमनी बैठी हुई पारो ने जब सुना कि मोहन अब उसी के साथ खेतों में काम करेगा, तो सहज ही उठ कर वह मंगू के लिए रोटियां सेंकने बैठ गई।

दूसरे दिन मुंह अंधेरे ही मोहन वहां पहुंच गया। हल कंधों पर डाल, बैलों को हांकता खेतों की ओर चल दिया। सूरज के सिर पर आने तक उस का खून पसीना हो कर बहता रहा। दम लेने के लिए जरा एक ओर बैठा, तो दूर से पारो को 'शा-बेला' (दोपहर की रोटी) उठाये हुए आते देखा। देख कर उसे सुख का जो अनुभव हुआ, वह अपूर्व था। क्योंकि कल्पना जैसे साकार हो गई। वह कहीं खो गया। चौंका उस समय, जब पारो बिल्कुल उस के पास आ खड़ी हुई।

हंसते हुए पारो ने मक्की की चार बड़ी २ रोटियां उस की ओर बढ़ा दी, साथ ही दूध का एक कटोरा भी। मोहन के लिए आज सब कुछ अपूर्व था—रोटियां भी, दूध भी। खाने के बाद पारो भी वहीं काम में लग गई। वह मिट्टी के बड़े २ ढेले तोड़ने लगी।

संध्या को दोनों एक साथ घर लौटे। दोनों को मालूम न था कि एक-दूसरे से क्या बातें किये जा रहे हैं, बस बातें थीं कि समाप्त होने में न आती थीं। रात को जब मोहन अपने घर जाने लगा, तो मंगू ने कहा, "अब इतनी दूर इस अंधेरे में कहां घर जाओगे! फिर मुंह अंधेरे आना भी तो है। मेरी मानो, तो आज से तुम यहीं डेरा जमा लो। यह भी तो तुम्हारा ही घर है।"

रात को आंगन में बैठ मोहन ने अलगोजों पर ऐसी धुन बजाई कि पारो का रोम २ सिहर उठा। मोहन के मन की व्याकुलता उस के हृदय तक पहुँचती रही। एक उन्माद था, जो अपनी सीमाएं बढ़ाता जा रहा था।

मंगू मौन था। मौन में भयंकरता थी।

खेत जब पूरी तरह गोड़े जा चुके, तो बरखा ऋतु आ गई।

उस रात मंगू घर पर नहीं था। वह कह कर गया था कि रात शायद उसे किसी दूसरे गांव में ही रहना पड़े।

बारिश बड़े ज़ोर से हो रही थी। रोटी खाने-खिलाने के बाद पारो भीतर जा लेटी। मोहन कम्बल लेकर पूर्ववत बरामदे में पड़ा रहा। आंधी की गति बढ़ गई थी। बौछार मोहन तक पहुँच रही थी। बिजली की कड़क से मकान की कच्ची दीवारें कांपने लगी थीं। मोहन को अभी कुछ समय पहले की बात याद आ रही थी। रोटियां देते हुए पारो का हाथ उस के हाथों से लग रहा था। फिर उस ने उन हाथों को हलके से दबा दिया था। पारो ने जल्दी से हाथ खींच लिया—वह शरमा गई थी। वह मन्द २ मुसकरा उठी थी। यही सोच २ मोहन अपने आप से विवश होता जा रहा था। मंगू के व्यवहार में अचानक ही जो परिवर्तन हुआ था, उस का रहस्य मस्तिष्क में स्पष्ट होने लगा था।

भीतर पारो को यों लग रहा था, जैसे वह अंगारों पर लोट रही हो। शरीर से आग सी निकल रही थी। उस ने न जाने क्यों किवाड़ जान बूझ कर बन्द नहीं किये थे। एकाएक बिजली पूरे ज़ोर से चमकी, द्वार अपने आप खुले गये। साथ ही मोहन भीतर आ गया।

"डर तो नहीं लग रहा ?" मोहन ने सावेग कांपते स्वरों में कहा।

पारो ने उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझी। बिजली के झटके

के साथ वह मोहन से लिपट गई । मोहन ने उसे अपनी बांहों में गुम कर दिया।

आंधी-झक्कड़ से मकान की दीवारें काँपती रहीं, बादल गरजते रहे, बिजली कड़कड़ाती रही । सारी रात ऐसा ही तूफान रहा— भयानक तूफान !

परन्तु उस रात का सबेरा बड़ा शान्त था।

तब फसल को कटे कुछ मास बीत चुके थे ।

गांव भर में यह चर्चा होते देर नहीं लगी कि मंगू के लड़का हुआ है। लोगों की नजरों से कुछ छिपा न था, लेकिन फिर भी कोई चुप कैसे बैठता, जब फसलें कट चुकी हों, समय फालतू हो और तिसपर ऐसी घटना घट जाये । बात जगतराम तक भी जा पहुंची । वह भागता हुआ मंगू के पास पहुंचा।

मंगू ने कहा, "जगतराम, मुझे एक उत्तराधिकारी चाहिए था। कैसे भी मैंने उसे प्राप्त कर लिया । लोग-बाग आज बातें करते हैं, कल स्वयं ही चुप हो जायेंगे।"

मंगू का बात करने का ढंग बिलकुल ऐसा था, जैसे कह रहा हो, 'एक मक्खी ही तो नाक पे आ बैठी थी, मैंने हाथ हिलाकर उसे उड़ा दिया।'

"लेकिन मंगू" जगतराम उस समय पिये हुए नहीं था, "यह उत्तराधिकारी तुम्हारा अपना नहीं । दूसरे के पुत्र को तुम अपना सब कुछ दे जाओगे?"

"दूसरों का पुत्र ?" मंगू क्रोध में चीखा, "मैंने पारो के पांच सौ नकद दिये हैं तुम्हें। सारा गाँव जानता है कि वह मेरी पत्नी है। वह पारो का बेटा है यह नहीं ?"

जगतराम पराजित हो गया। उस ने सोच रखा था कि मंगू अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगा। ज़मीन-जायदाद एक न एक दिन पारो द्वारा उसी की हो जायेगी।

उसी समय मोहन भी वहां आ पहुँचा। मंगू ने उसे बुला भेजा था। उसे देखते ही मंगू पहले से अधिक क्रोध में आ गया। वह क्रोध से कांपते हुए बोला, "मोहन, तुम समझते होगे, मैं अगली फसल के लिए भी अपने खेत तुम्हें ही दे दूंगा। यह भ्रम दिल से निकाल दो। गांव में बहुतेरे आदमी हैं काम करने वाले। वर्षों से वही करते आये हैं। तुम अब मुझे कभी मुंह भी न दिखाना। जाओ, अभी यहाँ से चले जाओ। परमात्मा तुम सब को कोढ़ी क्यों नहीं बना देता !"

ठगा हुआ मोहन टूटा हुआ दिल लेकर जब बाहर जा रहा था, तो पीछे से पारो छिप २ कर सजल नेत्रों से उसे निहार रही थी।

मुन्ने का कुर्ता

सुबह से शाम हो गई और बूआ नहीं आई। दिन में कई बार हमारे घर का चक्कर लगाना उस की आदत बन गई थी—और आज एक बार भी नहीं आई—मैं अचरज से भरा जा रहा था।

"क्यों, मां, आज बूआ ही नहीं दिखी?" मैंने कहा।

"बूआ?" मां जैसे मेरी बात सुन कर चौंक उठी।

"हां, मैं तो सुबह से देख रहा हूं कि एक बार भी नहीं आई, ठीक तो है वह?"

"हां ठीक है," मां ने कहा, "लेकिन—लेकिन—" मां ने बड़ी मुश्किल से बात पूरी की, "बूआ अब वह बूआ नहीं रही।"

"क्या?" मैं कुछ समझ नहीं पाया

"अभी आके बताती हूँ पूरी बात," कह कर मां कमरे से बाहर

निकल गई । मुझे लगा कि वह बात टाल गई । वह कह नहीं सकी जो कहना चाहती थी । आखिर ऐसा भी क्या घटा है ?

हम उन दिनों नए २ ही इस मुहल्ले में आए थे ।

बूआ के पिछवाड़े हमारी एक खिड़की खुलती थी । और तो किसी के धर हमारा आना-जाना नहीं हुआ, पर एक रोज खुद ही बूआ ने आ कर यह क्रम बांध दिया । पहले ही बार उस ने आ कर कहा था, "हमारे पड़ोस में आप आए हैं. सौ बातें होती हैं, लेना-देना होता है, जान-पहचान तो चाहिए ही ।"

और जैसे २ यह आना-जाना बढ़ता गया बूआ हम से खुलती ही चली गई । उस की बातों में ऐसा रस होता कि जी चाहता सुनते ही रहें । एक बार वह बात करना शुरू करती, तो फिर बात समाप्त होने में न आती । सुनने वाले भी हमेशा यही चाहते कि उस की बातों का अंतिम सिरा न कहीं आ पहुंचे ।

बूआ की उमर कोई तीस-चालीस के बीच होगी । ऊंची और पतली देह, बड़ी ही जंचती हुई । मुंह पर हंसी तो हमेशा खिली ही रहती । खुल कर भी यों हंसती कि उस के दांत भी नजर आने लगते—सफेद, मोतियों के समान चमकते हुए दांत ! रंगदार दातुन से रंगे हुए होंठों में उन दांतों की शोभा और भी बढ़ जाती । मुझे तो बूआ की हंसी बहुत ही भाती थी- सच कहूँ तो बूआ से भी अधिक ।

लेकिन मुझे इस बात का पता देर से चला कि बूआ इतना हंसती क्यों है । बात दुःखद थी, परन्तु सत्य थी । बूआ हमेशा इस लिए हंसती रहती थी कि अपने वैधव्य का दुःख दूसरों पर प्रकट न होने दे,

उस पर पर्दे पड़े रहें। मैं उस समय भी बूआ की आंखों में दःख की पतली २ परतें देखता था जब वह खिलखिला कर हंस रही होती। शायद यह मेरा वहम ही था—लेकिन मुझे सचमुच ही उस की हंसी में क्रंदन के स्वर सुनाई देते थे। इसे मैं अपनी मूर्खता ही कहूंगा। लेकिन बूआ को मैंने इस मूर्खता का आभास कभी नहीं पाने दिया। हंसती हुई बूआ के साथ मैं हमेशा हंसता ही रहा।

मेरे बिचार में यही दुःख छिपाने के लिए वह और भी कई बहाने करती थी।

वह सुबह तड़के उठती, चादर लपेटती और हाथों में फूलों की छोटी सी टोकरी पकड़ 'राम, राम, सिया राम' करती तवी दरिया पर नहाने चली जाती। ओकों २ नहा कर, जब वहां से लौटती, तो नहाने के लिए जाने वाले दूसरे व्यक्तियों से यों बच २ कर, बिदक-फुदक कर चलती कि देखने वाले हंसी से लोट-पोट हो जाते। नहाकर आते हुए किसी बिन नहाये से छू जाने का मतलब था फिर नहाना। घर पहुंचने से पहले मन्दिर जाने का अटूट नियम था उस का। और जब मन्दिर से लौटती तो अपने घर जाने से पहले हमारे घर का चक्कर जरूर लगाती। आते ही मुझे कहती, "सुनाओ, बेटा, क्या हाल है? सारा दिन तुम दिखते नहीं, ठीक तो हो?" उसे मुस्कराते देख मैं भी हंस के पूछता, "बूआ जी, इतनी सर्दी में आप को दरिया पर नहाते ठण्ड नही लगती?"

"तौबा! तौबा! आज कल के लड़के भी किस मिट्टी के बने होते हैं, कई २ दिन नहाते भी नहीं। हमें देखो, हम चालीस के होने

लगे, अब भी एक चादर लपेट कर दरिया पर नहा आते हैं, आते हुए मन्दिर में दो फूल भी चढ़ा आते हैं । बेटा, इस जीवन का क्या भरोसा ! जीने की कुछ तौर-विधि तो होनी ही चाहिए ।"

बूआ की यही बातें मेरा मन मोह लेती थी । वह जब चली जाती तो मैं गहरी सोच में डूब जाता । मैं बूआ से—बूआ की बातों से एक उत्साह, एक प्रेरणा पाने का यत्न करता । मैं सचमुच ही बूआ से बहुत ही प्रभावित था—बहुत ही ।

लेकिन बूआ की एक बात मेरी समझ में कभी नहीं आई । वह एक बात बूआ के शेष समग्र जीवन से मेल नहीं खाती थी । मेरी ही उमर का बूआ का एक लड़का था । वह किसी सरकारी दफ्तर में काम करता था । बड़ा शरमीला सा था वह । न कहीं आता था, न जाता । मेरे पास आता, पर कभी २ ही । बूआ ने उस की शादी भी छोटी ही उमर में कर दी थी । बड़ी सुन्दर तथा सुशील पत्नी थी उस की । उन के यहां एक लड़का हो चुका था । वे दोनों अपने मुन्ने को बड़ा प्यार करते थे । हमारे घर में भी वह मुन्ना सभी को भाता था । लेकिन अजीब बात यह थी कि बूआ का एकमात्र पोता होते हुए भी वह बूआ को एक आंख नहीं भाता था । बूआ को बेहद चिढ़ थी उस से । उसे देखते ही माथे पर बल पढ़ जाते । उसे खेलाना और उस से बातें करना तो दूर, कभी दूर से इशारा भी नहीं करती थी उसे । मौका मिलता तो गालियां भी निकालती थी बेहिसाब । भूल-चूक से यदि बहू कभी मुन्ने को बूआ के पास छोड़ जाती, तो बेचारी की शामत ही आ जाती । कई २ दिन के लिए गालियों की बौछार होती रहती । चारों पहर हंसने वाली बूआ आग का अंगारा बन जाती । सारे मुहल्ले के एक २ घर में जाकर रोती—

पीटती—"देखो, बहू मुझे चैन की सांस नहीं लेने देती। पता नहीं क्यों मुन्ने को हर समय मेरे ही पास—मेरे ही सामने रख देती है। अच्छी तरह जानती भी है कि मुझे मुन्ने से कुछ लेना-देना नहीं। कहती भी रहती हूँ कि मुझे बच्चों से घिन आती है। भला और काम ही क्या रहता है बहू को। एक मुन्ने को सम्भालने का काम ही तो है उस पर। बाकी तो मैं ही निपटा लेती हूं। फिर भी मेरे भाग जल गए हैं—नसीब फूट गए हैं।" यह कहते २ बूआ रो भी पड़ती। मैं देखता उस के गाढ़े भूरे कुर्ते पर आंसू एक २ करके गिरने लग जाते। अपने सफेद दुपट्टे से वह आंसू पोंछने की कोशिश करती, लेकिन पल्लू गीला हो जाता, आंसू न सूखते। वह दृश्य देखने में मुझे मुश्किल पड़ती। मैं कुछ सोच न पाता कि बूआ को यह क्या हो जाता है! एक बार तो वह बहू से इतनी लड़ कर आई कि रात को अपने घर भी नहीं गई। हमारे यहां ही सोई रही। मोहन (उस के बेटे) ने आ कर सौ २ मिन्नतें, खुशामदें कीं—पांव भी पकड़े—यह भी कहा कि हम मुन्ने को उस के नाना के यहां छोड़ आते हैं—लेकिन बूआ टस से मस नहीं हुई। साफ २ कह दिया कि मैं तुम्हारे घर आऊंगी ही नहीं। लेकिन दूसरे दिन तड़के ही घर पहुँच गई। टोकरी आदि पकड़ कर दरिया की ओर चल दी। बूआ की यही बात मेरी समझ में नहीं आई—कभी नही आई।

फिर मैं अपनी नौकरी के सम्बन्ध में बड़े शहर चला गया। लेकिन बूआ को कभी भूल नहीं सका।

आज एक बरस के बाद घर आया, और मां की यह बात सुन कर स्तब्ध रह गया कि बूआ अब वह बूआ नहीं रही।

अब बूआ को क्या हो गया है ? मां मेरे साथ बात भी क्यों नहीं कर पाई ? ऐसी क्या बात हो गई है ?—यह सब सोच कर मैं घबरा सा गया। तुरन्त दूसरे कमरे में मां के पास पहुंचा, कहा, "माँ, तुम ने बूआ के बारे में क्यों नहीं बताया कुछ ?"

मां ने कांपते स्वरों में कहा, "जब से मुन्ना, उस का पोता मर गया, तब से वह बूआ अब वह बूआ नहीं रही !"

"मुन्ने को क्या हुआ ?" मैंने चकित हो कर पूछा।

"उसे अचानक ही कोई बुखार हुआ, बहुत ही बढ़ गया बुखार, डाक्टर भी कुछ नहीं कर सका, और वह दो ही दिनों में चल बसा।"

सुन कर बहुत ही दुःख हुआ मुझे। कितना गुलगुला—सा, हंसमुख बच्चा था बेचारा। मैंने सोचा मुझे अभी मोहन के पास जाना चाहिए। इस समय वह दफ्तर से आ चुका होगा। तभी दुबारा बूआ की बात याद आ गई।

"मां, बूआ को क्या हुआ, उसे तो मुन्ना एक आंख न भाता था !"

"वह तो उस का अति स्नेह था, बेटा," कहते २ मां की आंखें भर आईं; "वह मुन्ने को अपने से इस लिए दूर रखती थी कि उस पर अपने रंडापे की मनहूस छाया न पड़ जाए।"

मैं कांप उठा। मुझ से अधिक देर तक रहा नहीं गया। मैं उसी समय बूआ के घर पहुँचा। मोहन अभी दफ्तर से नहीं आया था। बहू ने बताया कि बूआ पछबाड़े के कमरे में है। मैं वहां पहुंचा,

देखा देहली के पास ही बूआ मशीन सामने रख कर कुछ सी रही है। एक ही बरस में बूआ बिल्कुल बूढ़ी हो चुकी थी। गालों पर झुर्रियां पड़ गईं थीं, ऐनक भी लगाती थी। मैंने हाथ जोड़ कर अभिवादन करना चाहा, लेकिन बूआ ने मेरी तरफ देखा ही नहीं, वह मशीन चलाये जा रही थी, पर पता नहीं क्या सी रही थी। मैं एक ओर उस के पास ही खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर बाद उस ने मशीन से कपड़ा निकाला तो मैंने देखा, वह एक छोटा सा कुर्ता था। ज़रा झाड़ कर उस ने उस कुर्ते को ज़रा ऊपर किया और बोली, 'देखो, कितना अच्छा बन गया है, मुन्ने का कुर्ता!"

प्रेम की अंतिम भेंट

चौधरी जी को मैंने कमरे में आते हुए देखा, परन्तु ध्यान नहीं दिया। लिखने में व्यस्त था। शाम तक नाटक का शेष भाग लिखना था। छः बजे रीहर्सल थी। रेडियो स्टेशन की नौकरी ही ऐसी होती है कि एमरजेंसी का भूत हर समय सिर पर सवार रहता है।

"क्यों जी क्या हो रहा है ?"

मैंने फिर भी सिर उठा कर नहीं देखा। नाटक में उस समय नायिका पर्वत की चोटी से कूद ही रही थी---"और उस की चीख सारी घाटी में गूंज गई", यह वाक्य लिखने ही चला था। अचानक कानों में एक फूत्कार सुनाई दी। देखा चौधरी जी मेरे दाएं कान के समीप मुंह ले आए हैं। मस्तिष्क में नायिका की चीख गूंज रही थी। चौधरी जी की आवाज़ ने जैसे उसे आत्म हत्या करने से बचा लिया। फूत्कार में से आवाज़ उभरी, "आज तो बड़ी घुलमिल कर बातें हो रही थीं, क्या कहने हैं आप के— ऽ ऽ ऽ"

मैंने चौधरी जी का आशय समझ लिया। अभी आध घण्टा पहले रेखा मेरे पास बैठी हुई थी। मैं उसे नाटक की कहानी सुना रहा था, ताकि शाम को रीहर्सल करने से पहले ही वह समझ जाए कि नाटक में उस की भूमिका क्या है-- कैसे है।

परन्तु चौधरी जी का उसी बात को लेकर यह कहना कि, "आज बड़ी घुलमिल कर बातें हो रही थीं", इतना अप्रत्याशित न था। मुझे मालूम था रेखा का मेरे पास बैठना उन्हें भीतर-बाहर से जला कर राख कर गया है। उन के वश में होता तो मेरे पास आ कर हंसी के लहजे में यह बात पूछने के बजाए चुपके से मेरा गला घोंट देते।

"आप की बातें हो रही थीं चौधरी जी।"

"सच ?"

मैं भौंचक्का सा उन्हें ताकने लगा। मेरी बात सुन कर उन की आंखों में एक तीव्र चमक आ गई, गर्दन तन गई, मुंह खुले का खुला रह गया और नथने फूल गए। मुंह खुला रह जाने के कारण उन की बतीसी का शेष भाग—छः दांत (तीन ऊपर के, तीन नीचे के) साफ दिखाई देने लगा। मुझे अपने साधारण से झूठ को इतना फलित देख जो अचम्भा हुआ उस की कोई सीमा नहीं थी।

मुझे चुप देख चौधरी जी ने उसी तनाव के साथ दुबारा पूछा, "क्या सचमुच तुम ने रेखा से मेरे सम्बन्ध में कोई बात की है ?"

"और हम दोनों बैठे हुए क्या करते रहे।" एक झूठ को छुपाने के लिए कई झूठ बोलने पड़ते हैं—ऐसा तो शास्त्रों में भी लिखा है।

"कुछ बताओ तो क्या बात हुई।" चौधरी जी ने मेरे इतने समीप आ कर यह बात कही कि उस के श्वास की दुर्गंध से मेरा दिमाग फटने लगा। मैंने हाथ से उन्हें परे करते हुए कहा, "देखिये चौधरी जी इस समय मुझे नाटक पूरा करने दीजिए। बहुत थोड़ा समय रह गया है। यह फिर किसी समय बताऊंगा कि मैं और रेखा आप के सम्बन्ध में क्या २ बातें करते रहे हैं।"

चौधरी जी का मुंह उतर गया, जैसे जलते हुए कोयले को एकाएक किसी ने पानी में डुबो कर बाहर निकाला हो। वह वहां कितनी देर खड़े रहे, और जब चल दिये, मुझे पता नहीं। नायिका से आत्म हत्या करा कर और अन्त में नायक के मुंह से कुछ दुःखांत डायलाग बुलवा कर मैंने नाटक तो समाप्त कर दिया, परन्तु चौधरी जी आज मुझे जिस भूमिका में दिखाई दिये मैं इतना व्यस्त होने पर भी उसे भुला नहीं पा रहा था।

मैं यहां रेडियो-स्टेशन के नाटक विभाग में लेखक निर्देशक हूं। चार-पांच वर्षों से यहां काम कर रहा हूँ। चौधरी जी मुझ से पहले से यहां काम कर रहे हैं। वह स्वयं सुनाते हैं कि ऐसा कोई शासकीय कार्यालय नहीं, जहां उन्होंने काम न किया हो। गत बीस वर्षों से वह क्लर्की ही करते आए हैं। यहां भी वह क्लर्क ही हैं। परिवार में शायद एक वहीं हैं, दूसरा कोई नहीं, इसी लिए क्लर्की से ऊपर उठने का कभी विचार नहीं किया। कारण तो मुझे ज्ञात नहीं, पर इतना सभी जानते हैं कि उन का विवाह कभी नहीं हुआ और अब होगा भी नहीं। बतीसी के जो छः दांत रह गए हैं, आखिर वह और कितनी देर जुड़े रहेंगे। परन्तु इस में कोई संदेह नहीं कि हृदय से वह अब भी जवान हैं। सिर के पके हुए बालों को पगड़ी से ढके

रहते हैं, और खिचड़ी हो गई मूंछों को खिज़ाब से नियम पूर्वक काला करते हैं। कई बार हम युवकों के सामने वह ऐसी अश्लील बातें करते हैं कि शरम आ जाती है। हमें शरमाते देख वह बड़े गर्व से मुस्कराते हुए मूंछों पर उंगलियां फेरने लगते हैं। तब उन की छब्बीस इंच की छाती भी फूल जाती है, और अपने साढ़े चार फुट कद से वह कुछ ऊंचे ही दिखने लगते हैं।

विवाह के नाम पर चौधरी जी की राल टपकने लगती है। स्त्रियों को घूरने से उन्हें विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। कहीं भी युवक-युवति को एक साथ बैठे देख लें तो मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। केवल रेखा ही एक ऐसी लड़की है, जिस के साथ किसी को बैठे देख उन्हें बिलकुल नहीं सुहाता।

रेखा रेडियो-स्टेशन में आने वाली लड़कियां में सब से सुन्दर है। कुलीन और सुशिक्षिति है। दो वर्ष पहले जब वह पहली बार यहां आई थी तो मेरे पास आने के लिए उस ने केरीडोर में खड़े चौधरी जी से मेरे कमरे का नम्बर पूछा था। तब चौधरी जी उसे देखते ही रह गए थे। रेखा के दूसरी बार पूछने पर भी उन के मुंह से कोई शब्द न निकला। तब रेखा उन्हें कोई पागल बूढ़ा जान कर आगे बढ़ गई। यह सब स्वयं रेखा ने मुझे बताया था। उस के बाद जब भी रेखा मेरे पास कमरे में बैठी, मुझे महसूस हुआ कि किसी न किसी ओर से किसी की दो आंखें अवश्य हम दोनों को निरंतर घूर रही हैं और मैंने कई बार चौधरी जी को रंगे हाथों पकड़ भी लिया। उस समय वह केवल मूर्खों सा हंस देते। मुझे भी हंसी आ जाती।

रेखा इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती थी।

उसी दिन शाम को जब वह रीहर्सल करने के लिए आई और उसी स्थल पर पहुँची जहां नायिका को (आत्म हत्या करते हुए) ज़ोर से चीखना था तो अनायास ही मैं उस की ओर देख कर मुस्करा दिया।

रेखा चीखते २ रुक गई, "आप क्यों हंसे ?"

"कब ?" मैं झेंप गया।

तब उस ने जिद पकड़ ली कि मैं उसे अपने हंसने का कारण बताऊं। परन्तु कुछ कह न सका। कहता भी क्या ?

उस दिन रीहर्सल ठीक से नहीं हुई।

उसी रात मैं घर में खाना खाने के बाद ज़रा आराम से बैठा ही था कि बाहर से किसी ने पुकारा। बाहर आ कर देखा तो चौधरी जी थे।

मैंने कहा, "आइये चौधरी जी, भीतर बैठिये।"

"अरे नहीं नहीं, इस समय क्या बैठना हुआ। खाना तो खा चुके होंगे, चलो ज़रा घूम-फिर आएं। खाना खाने के बाद टहलना ज़रूरी होता है। स्वास्थ्य बना रहता है।"

मैंने मुस्कराते हुए चौधरी जी के स्वास्थ्य को निहारा, फिर उन के साथ चल दिया।

गली से बाहर निकलते ही बाज़ार में जो सब से पहला रेस्तरां दिखाई दिया, चौधरी जी बाज़ू से पकड़ कर मुझे उसके भीतर ले चले। दो कप चाय का आर्डर दिया और एक तरफ पर्दों से बने के बिन में ला बिठाया।

मैं जानता था यहां तक पहुंचने का अभिप्राय, परन्तु चौधरी जी के कौतूहल और औत्सुक्य का मज़ा ले रहा था। बातें करते हुए वह बार २ मेरी ओर साग्रह दृष्टि से देख रहे थे, और मैं बातों का रुख बदलता जा रहा था। चाय पी चुकने के बाद भी जब मैंने उन के मतलब की बात न छेड़ी तो उन की स्थिति बड़ी ही दयनीय हो गई। मेरी बांह थाम कर बोले, "यार तुम ने बताया ही नहीं रेखा के साथ आखिर क्या बात हुई।"

मैंने कहा, "चौधरी जी, वह आप की बड़ी इज्ज़त करती है। कह रही थी कि सारे स्टाफ में एक चौधरी जी ही भले मानस हैं। बड़े निरीह और भोले हैं।

"बस ?" चौधरी जी की तनिक भी तसल्ली नहीं हुई।

"बस इतना ही कह रही थी।" अब इस से अधिक झूठ और मैं क्या बोलता।

वह न जाने क्या सोचने लगे।

"क्या बात है चौधरी जी ?" जानते-बूझते अजान हो कर मैंने कहा।

"अब तुम से क्या छिपाऊं," चौधरी जी ने बिलकुल मेरे समीप आ कर फुसफुसाते हुए कहा, "मेरी तो रातों की नींद हराम हो गई है। बिस्तर पर बिना पानी की मछली के समान तड़फता रहता हूं। मुंह से रेखा ही रेखा निकलता है।"

"आप ऐसा कीजिए चौधरी जी रात को नींद की गोलियां खा कर सोया कीजिए।"

"ही ही ही ऽऽऽ" चौधरी जी झेंप मिटाने के लिए हंस दिए। फिर बोले, "यार तुम तो मज़ाक करते हो। साफ २ बताओ मेरी कोई बात बन सकती है या नहीं ?"

"क्या मतलब ?" मुझे सचमुच ही क्रोध आ गया था।

मेरे क्रोध की उपेक्षा कर वह पुनः खीसें निपोर कर मूर्खों सा हंस दिए। बोले, "यार सारी उमर बीत गई ऐसे ही। लोग कहते हैं कुंवारे मरने से मनुष्य भूत बन जाता है। भूत बनने की कल्पना से ही मुझे बुखार चढ़ता है। यदि तुम चाहो तो रेखा से मेरी बात बना दे सकते हो।"

अब मुझे अपने मूर्ख होने का विश्वास हो गया, न होता तो इस अर्द्ध विक्षिप्त बूढ़े के साथ बात यहां तक न बढ़ाता। फिर उसी क्षण बिजली के समान एक बिचार मेरे मस्तिष्क में कौंध गया। झट से पूछा, "चौधरी जी अगर आप की बात पक्की करा दूं तो क्या खिलाएंगे ?"

"अरे"— चौधरी जी ने मेज पर हाथ मारते हुए कहा," तुम खाने-पीने की बात कर रहे हो, जो मांगोगे वही दूंगा।"

मैंने कहा, "इस में कुछ समय लग जाएगा।"

"हां हां समय तो लगेगा ही।" चौधरी जी ने निश्चित स्वर में कहा, "अच्छी बातों के करने में समय तो सदा लगता है।"

फिर हम वहां से उठ कर आ गए। मालूम था चौधरी जी को तो सारी रात नींद आएगी नहीं। मैं स्वयं भी कितनी ही देर इसी विषय में सोचता रहा।

अब चौधरी जी हर रोज़ आफिस में चाय पिलाने लगे। जरा सा भी अवकाश मिलता तो मेरे पास आ बैठते, और झट से चाय का आर्डर देते। उसी समय मैं दो चार मित्रों को भी किसी बहाने बुला भेजता। सभी के लिए चाय आती। विशेष कर जब कभी रेखा किसी काम से मेरे पास आ कर बैठती तो सहसा चाय के साथ और बहुत कुछ खाने के लिए आ जाता। रेखा इसे मेरा सौजन्य जान स्वीकार करती। मैं बस मुस्करा कर रह जाता। वह जब चली जाती तो अविलम्ब चौधरी जी यों आ टपकते जैसे अलाहदीन के चिराग का चमत्कार हुआ हो। मेरे पास बैठ कर हौले से पूछते, "रेखा ने चाय तो पी ?"

"अजी चौधरी जी क्यों हमें बना रहे हैं, आप स्वयं उस छिद्र से झांक कर हमें चाय पीते हुए नहीं देख रहे थे ?"

चौधरी जी नव बधुओं-सा शरमा कर हंसने लगते। पुनः फुसफुसा कर पूछते, "अच्छा यह बताओ उसे चाय तो पसंद आई ?"

"आप की भेंट और पसंद न आए ? आप तो देख ही रह थे क्या मज़ा ले-लेकर अपने लाल-लाल होठों से घूंट-घूंट पी रही थी।"

चौधरी जी तरंग में आ कर दोनों हाथों की मूठ अपने मुंह के बराबर ले जा कर झूमने लगते। उन की लज्जा और हर्ष का प्रदर्शन देखने योग्य होता। पूछते, "क्या वह जानती है कि चाय मैंने मिगवाई थी ?

"कमाल की बात करते हैं आप भी ?" मैं तनिक गम्भीर हो कर कहता, "आप समझते हैं यह रोज़-रोज़ की चाय मेरे नाम से पीती है ?"

"अरे रे ऽ ऽ ऽ—भई नाराज़ क्यों होते हो दोस्त ! मैंने तो केवल इस लिए पूछा था कि ज़रा अपना मन प्रसन्न हो जाए। बस हो गया—हो गया। अच्छा यह बताओ कोई और भी बात हुई ?"

'हुई क्यों नहीं, बहुत सी हुईं" मैंने उत्साह भरे लहजे में कहा। विचित्र बात थी कि बिना कुछ सोचे-समझे ही मैं ठीक लक्ष्य की ओर बात बढ़ाए जा रहा था।

"कुछ हमें भी तो बताया करो यार" चौधरी जी व्याकुल हो गए।

"सुनिये चौधरी जी ! पहले तो मैं संकेतों द्वारा यह पता लेता रहा कि विवाह के सम्बन्ध में उस के क्या विचार हैं। जब मुझे यह मालूम हो गया कि वह विवाह के लिए तैयार है तो मैंने हेर-फेर करके आप की बात करनी चाही। परन्तु रेखा तो मुझ से भी अधिक होशियार निकली। कहने लगी "आप साफ २ बताइये किस के बारे में बात कर रहे हैं ?" तब मैंने कहा, मैं चौधरी जमीअत सिंह के बारे में बात कर रहा हूं, जिन की आप बड़ी प्रशंसका हैं।"

उस समय चौधरी जी यों मेरी बात सुन रहे थे, जैसे 'ध्यान-योग' में व्यस्त हों।

मैं कहता गया, "वह आप का नाम सुन कर यों शरमाई जैसे कोई छुई-मुई का फूल हो। मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "ऐसा वर आप को ढूंढे से भी नहीं मिलेगा।" वह सोच में डूब गई। शायद आप की कल्पना में खो गई वह उस समय। आप की बड़ी २ काली मूंछें, ऊंची पगड़ी, चौड़ा सीना, रौबीली चाल-ढाल याद आ गई होगी।"

"फिर उस ने उत्तर क्या दिया ?" चौधरी के पसीने छूट रहे थे।

"वह कितनी ही देर कुछ नहीं बोली। वास्तव में आप का नाम सुन कर ही वह इतनी प्रभावित हो गई कि कुछ बोल ही न सकी।"

"कुछ भी नहीं कहा उस ने ?"

"मैंने बहुत ज़ोर लगाया तो कहा सोच कर उत्तर दूंगी।"

चौधरी जी ने माथे का पसीना पोंछा।

तब कई दिन और बीत गए। मैं यही कह कर टालता रहा कि रेखा अभी इस सम्बन्ध में किसी निर्णय पर नहीं पहुंची। फिर जब इस बहाने से टालना असम्भव हो गया तो विवश हो कर ग्रामीण कार्यक्रम चलाने वाले कुछ विदूषकों को अपना भेदी बनाना पड़ा। उन्हें जब सारे मामले का पता चला तो बल्लियों उछल पड़े। दो दिन में ही चौधरी जी का विवाह करा देने का प्रस्ताव पास हो गया।

चौधरी जी के घर में कुमकुमे जला कर रोशनी ही रोशनी कर दी गई थी। (वैसे गली में अंधेरी था) गुब्बारों-फानूसों से सजे हुए एक बड़े कमरे में, एक चौड़े दीवान पर चौधरी जी दूल्हा बने बैठे थे। गुलाबी रंग की पगड़ी पर सफेद फूलों का छोटा सा सेहरा बंधा था। खिजाब से मूंछों और सिरके बालों को पूर्णतया काला किया हुआ था। ज़रीका सुनहरा कोट और चूड़ीदार पाजामा पहना हुआ था। हम सभी उन की खातिरदारियों में लगे हुए थे। एक भव्य भोज का आयोजन किया गया था। बहुत कीमती विस्की की बोतलें मंगवाई गई थीं। इस सारे आयोजन के लिये चौधरी जी ने दो सौ रुपया दिया था।

प्रोग्राम यह तह पाया था कि जब हम सब मित्र खाना खा चुकेंगे

तो हम में से कोई रेखा को लिवालाने के लिए चला जाएगा। रेखा अपने घर वालों से छिप कर यहां आयेगी अर्थात् दुनिया वालों की नज़र में यह गांधर्व विवाह होगा। रेखा के लिए अलग कमरा सजाया गया था। कुछ समय पहले जब चौधरी जी ने उस सुहाग-कक्ष को देखा था तो उन्हें बड़ी कठिनाई से बेहोश होने से बचाया गया था।

बड़े ठाठ से सब खाना-पीना हुआ। कव्वाली गाई गई। चौधरी जी ने भी ताली की थाप दे दे कर गाया। उन्हें दुहरा नशा था। एक बार तो उठ कर स्वतः नाचने लगे। ऐसे अंदाज से एक हाथ कमर पर और एक सिर पर रख कर कमर को झटके दिये कि हम सब लोट-पोट हो गए। इसी बीच मदन और सुरेश दुल्हन को लिवाने चले गये।

दुल्हन आ गई। लाल कपड़ों में लिपटी, घूंघट डाले। नाचने गाने का प्रोग्राम समाप्त हो गया। चौधरी जी ने तो यों गम्भीर मुद्रा बना ली जैसे वृक्ष की चोटी पर बैठा हुआ बंदर। दुल्हन को सुहाग-कक्ष में बिठा दिया गया।

चौधरी जी दुल्हन के पास जाने के लिए छटपटा रहे थे। हम उन से यों मज़ाक करने लगे जैसे पहली बार ससुराल जाने पर सालियां करती हैं। चौधरी जी शरमाते-कसमसाते रहे। हम ने उन्हें तब तक रोके रखा जब तक उन की कसमसाहट छटपटाहट में न बदल गई। आखिर विवश हो कर वह हाथ जोड़ कर खड़े हो गये, "भई आप लोग जाओ।"

हम सभी बड़े आराम से उठे, और बिल्कुल बरातियों से बिदा ले कर चल दिये।

दूसरे दिन मैंने तो आफिस से सप्ताह भर की छुट्टी ले ली, परन्तु मदन ने आ कर बताया कि कैसे उसे दुल्हन समझ चौधरी जी ने उस का घूंघट उठाने की कोशिश की, और कैसे वह घूंघट उठाने से पहले ही किसी बहाने कमरे से बाहर आया और फिर भीतर नहीं गया।

एक वर्ष के बाद रेखा का विवाह हो गया।

मैं उस दिन शाम गए तक आफिस में बैठा रहा। बहुत उदास था उस समय मैं। सोच रहा था रेखा से मेरा विवाह क्यों न हो सका? मैं भी चाहता था और रखा भी चाहती थी। बहुत देर इन्हीं सोचों में डूबता तिरता रहा। रुलाई सी आ रही थी। आखिर सारा दोष परिस्थितियों को दे कर उठा, और इस बात पर बिचार करता हुआ घर चलने को हुआ कि रेखा को ऐसा कौन सा उपहार दिया जाये कि वह आजीवन उसे सीने से लगाये रखे।

तभी चौधरी जी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। मैं उन दुःख भरे क्षणों में उन्हें बिलकुल भूल चुका था, और पिछले एक वर्ष से मेरी उन की बोल-चाल भी बन्द थी। आज अकस्मात उन्हें यों अपने पास आते देख कुछ अजीब सा लगा। मेरे बिलकुल समीप आ कर बोले, "पीछे जो कुछ हुआ मैं भूल चुका हूँ। केवल एक रेखा की याद रह गई है। आज उस का विवाह हो रहा है, तुम तो वहां जाओगे ही। मैं उसे एक उपहार देना चाहता हूँ," यदि तुम मेरा उपहार उसे पहुंचा दो तो मैं तुम्हारा उपकार कभी न भूलूंगा। यह कह कर उन्होंने बास्कट की जेब से एक अंगूठी निकाली, और मेरे हाथों में थमा दी।

"लेकिन चौधरी जी मैं उसे कहूंगा क्या ?"

"कहना यह उपहार तुम्हारी ओर से है। मेरी यह इच्छा नहीं कि तुम रेखा के सामने मेरा नाम अवश्य लो। मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि मेरा उपहार उस के पास पहुंच जाए।" यह कह कर चौधरी जी कमरे से बाहर निकल गये। उन की आंखें सजल थीं।

एक वर्ष पूर्व के अपने कुकृत्य की मुझे इतनी ग्लानी थी कि मैं रेखा को चौधरी जी का उपहार पहुँचाए बिना नहीं रह सकता था. परन्तु चौधरी जी का यह उपहार मेरी प्रेम-भेंट समझ कर रेखा सदैव के लिये छाती से लगा कर रखेगी—इस बात से मैं एक विचित्र दुविधा में पड़ गया।

चौधरी जी के चाय से आरम्भ हो कर चौधरी जी की बहू मूल्य भेंट पर मेरी और रेखा की कहानी समाप्त हो जायेगी—अब यह निश्चित था। परन्तु रेखा कभी कल्पना में भी चौधरी जी के बारे में नहीं सोच सकेगी। कभी नहीं।

मैं यही सोचता हुआ सोने की वह बहु मूल्य अंगूठी जेब में रख कर रेखा के घर की ओर चल दिया।

टूटते वृक्ष, नयी पौध

शानो बेतहाशा भाग रही थी। उस का सांस फूल गया था। पहाड़ी पगडण्डी पर उतरते हुए उस के घुटनों के जोड़ पीड़ा करने लगे थे, परन्तु वह भागती जा रही थी। उस की आंखों में एक विचित्र ज्योति थी। अह्लाद वश उस के हृदय की तीव्रगति में से एक ही ध्वनि निकल रही थी—"रतन आ गया, रतन आ गया !"

अभी अभी उस ने पहाड़ की चोटी पर से रतन को आते देखा है। दूर ऊपर, सर्प मन्दिर के पास वह अपनी बकरियों को चराने ले गई थी। वहां एक बड़े से पत्थर पर बैठे-बैठे अचानक उस ने सुना—"जीना पहाड़े दा जीना।"

"अरे" वह चौंक उठी। आबाज पहचानने के लिए उस का सर्वस्व कर्ण-रूप बन गया। उस ने फिर सुना—फिर सुना। वह तो रतन ही की आबाज़ थी। तब उस ने लपक कर एक खतरनाक टीले से झांका।

"रतन !" उस का रोम-रोम पुकार उठा। रतन को तो वह कितनी भी दूर से पहचान सकती है। रतन देखते हुए उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि वह कितने खतरनाक टीले पर खड़ी है। पांव फिसलने लगा था कि चौंक कर उस ने अपने आप को सम्भाल लिया। तेज़ी के साथ वहां से मुड़ी। दोनों बकरियों को जल्दी से मन्दिर के बाड़े में बन्द कर गांव की ओर भागने लगी। वह सब से पहले लछमी को सुनाना चाहती थी कि उस का बेटा रतन आ गया है।

लछमी क्या उस की बात का विश्वास करेगी ? अपने इकलौते पुत्र के विछोह में समय से पहले बूढ़ी हो चुकी लछमी मान ले गी कि उस का बेटा लौट आया है ? जो आज से छ: वर्ष पहले बिना सुनाए ही गांव से चला गया था। परन्तु शानो को इस बात की चिन्ता नहीं थी कि लछमी उस की बात का विश्वास करेगी या नहीं। वह तो उसे यह खबर देना चाहती है कि उस का बेटा लौट आया है।

अब उस ने दूर ऊपर से उतरती हुई पगडण्डी को पीछे छोड़ दिया था। नाले के पुल पर पहुँच कर भी उस ने भागना नहीं छोड़ा। लकड़ियों के उस अनगढ़ पुल पर से वह गिरते-गिरते बची। अब वह गांव की सीमा में पहुँच गई थी। थोड़ी ही दूर उसे लछमी का घर दिखाई दे रहा था।

घर के आँगन में पहुंच कर भी वह रुकी नहीं।

"चाची" पुकार कर उस ने उसी गति से द्वार पर धक्का दिया, सांकल नहीं लगी थी, सो भीतर कोठरी के मध्य जा गिरी।

धान कूटती हुई लछमी अकस्मात शानो को इस प्रकार गिरते देख

स्तब्ध रह गई। मूसल उस के हाथ में ही पकड़ा रह गया।

"चा ऽ ऽ ची—चाची" शानो ने उठते हुए कहा। सांस अधिक फूलने के कारण उस से बोला नहीं जा रहा था।

"क्या बात है शानो ?" लछमी ने मूसल को एक ओर फेंक शानो के पास आते हुए कहा।

"रतन—रतन आ गया चाची" शानो ने श्वास को वश में करते हुए कहा।

लछमी पर उसी क्षण एक विमूढ़ता छा गई। यह क्या कह रही है? रतन—उस का रतन आ गया? नहीं—नहीं! विस्फारित नेत्रों से वह शानो की ओर देखती रह गई।

"रतन आ गया चाची।" शानो ने दुबारा उसी वेग से कहा। वह लछमी की मूढ़ता को भंग करना चाहती थी, मैंने खुद उसे चोटी पर से देखा है। फौजी वर्दी पहने हुए है वह। कंधे पर एक छोटा सा बोझा है। सर्प मन्दिर के पास मैं बकरियां चरा रही थी। उस की आवाज सुनी, वह गा रहा था, "जीना पहाड़े दा—बस वह यहां पहुंच ही रहा होगा।"

'तुम सच कह रही हो क्या ?" लछमी ने बढ़ कर शानो को कंधे से पकड़ लिया।

"हां, हां चाची मैंने अपनी आंखों से उसे देखा है। चलो—चलो बाहर देखो वह आ ही रहा होगा। मैं तो अपनी बकरियां भी मन्दिर के बाड़े में छोड़ आई हूं।"

दोनों बाहर आ गईं। वे कुछ क्षण जैसे पहाड़ बन गए। लछमी की जैसे कोई परीक्षा ले रहा हो।

"वह देखो आ गया रतन।" शानो ने कहा, "मैं जाती हूँ अपनी बकरियां लाने के लिए।"

लछमी ने नहीं सुना कि वह क्या कह गई। उस ने नहीं देखा कि वह चली गई। वह तो नाले के पुल पर चलते हुए अपने रतन में खो गई थी।

रतन ने भी दूर ही से माँ को देख लिया। वह भागा। घर के आंगन तक पहुंचते हुए उसे तनिक भी विलम्ब नहीं हुआ। "मां!" कह कर आगे बढ़ा।

'रतन—मेरे बच्चे" रोते हुए लछमी ने उसे अपनी कपकपाती भुजाओं में ले लिया।

रतन भी अपने आँसू न रोक सका।

"कहां चला गया था तू, मुझ भागों जली को अकेला छोड़ कर?"

रतन आंसू पोंछता हुआ भीतर आ गया। लछमी ने उस के सिर पर से दो पैसे वारते हुए कहा, "जाते हुए तुम ने इतना भी न सोचा कि तुम्हारे बाद मेरा क्या होगा? रो-रो कर देखो मेरी आंखें भी बुझ गई हैं। अब तो नहीं जाएगा तू?"

रतन को मां की सूख कर कांटा हो गई देह को देख कर पश्चाताप हो रहा था। गांव से उस के भागने का परिणाम यह होगा—उस ने कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। यहां उसे दो महीने की

छुट्टियां काट कर वापस नौकरी पर जाना है—परन्तु इस समय मां से ऐसा कह सकने का साहस न बटोर सका। उस का भीतर-बाहर द्रवित हो चुका था। बोला, "अब कहां जाऊंगा माँ—कैसे जा पाऊंगा। तुम्हें इस हालत में छोड़ कर कहां जाऊंगा।"

लछमी को राहत सी अनुभव हुई। एक सजल मुस्कराहट उस के मुख पर फैल गई। बोली, "तू तो बहुत बुरा निकला। ऐसा भागा कि किसी को पता ही न चला।"

"पता चलता तो फिर भागता कैसे मां?"

कटोरा भर लस्सी और कुछ सत्तू ला कर लछमी ने रतन को दिए। रतन लस्सी और सत्तुओं की ओर देखता रह गया। पूरे छः वर्षों के बाद मां के हाथों से यह नवैध मिला था। उस की आंखें पुनः छलछला आईं।

रतन के आने की खबर इस छोटे से पहाड़ी गांव में यों फैल गई जैसे बरसाती नालों का पानी ढलानों में फैलता है। बावड़ियों में पानी भरती हुई स्त्रियों, खेतों में काम करते हुए पुरुष और आंगन-गलियों में खेलते हुए बालकों के मुख में इस के अतिरिक्त कोई बात न रही कि—"रतन आ गया।"

छः वर्ष पहले जब रतन केवल पंद्रह वर्ष का था, गांव का एक युवक स्वर्णसिंह जो सेना में कहीं सिपाही था, छुट्टी के दिन व्यतीत करने के लिए घर आया हुआ था। उस ने सैनिक-जीवन और शहरी वातावरण सम्बन्धी तथ्यों का कुछ ऐसी चटपटी भाषा में वर्णन किया था कि रतन ने चुपके-चुपके अपने घर—अपने गांव—अपने खेतों की सीमाओं से दूर भागने का निश्चय कर लिया था। मां की ममता और शानो

का प्यार भी उस की राह न रोक सका था। उस पर एक ही धुन सवार हो गई थी कि जम्मू जा कर सेना में भरती हो जाए। जब स्वर्णसिंह को छुट्टी काट कर गए हुए पंद्रह-बीस दिन हो गए तो एक सुवह लछमी ने उठ कर देखा रतन कहीं भी नहीं। गांव के सभी लोगों ने उस से सहानुभूति दर्शाई, परन्तु लछमी की तो कमर ही टूट गई थी, गांव वालों की सहानुभूति ग्रहण करके भी क्या होता।

रतन छोटा सा था, बरस दो बरस का, जब लछमी के पति की मृत्यु हुई थी। सधवा होते दुखी थी विधवा हो कर और भी दुखी हो गई। जीने की एक ही टेक थी—रतन के प्रति ममता—यह आशा कि वह बड़ा होगा। उसे ही ले कर भरपूर सघर्ष का सामना किया, परन्तु जब रतन ही चला गया तो वह टेक ही टूट गई जैसे।

शानो तब दस वर्ष की होगी। रतन के प्रति उस के प्यार में तब भी कोई दुविधा न थी। वह तो सारा-सारा दिन रतन के पीछे-पीछे घूमती रहती। वह रतन की शरारतों में बराबर की भागीदार थी। दोनों ने मिल कर गांव के सभी लोगों का नाक में दम कर रखा था। कभी दोनों तालाब में मछलियों के समान भीतर ही भीतर तैर कर अन्य नहा रहे लोगों की जांघों पर काट खाते, कभी वृक्षों पर चढ़ कर नीचे बैठे हुए लोगों को कच्चे फलों का निशाना बनाते रहते, परन्तु पिटने के लिए कभी किसी के हाथ न आते। लोग इतनी बड़ी विवाह के योग्य हो गई लड़की को एक लड़के के साथ मिल कर ऐसी शराते करते हुए देखते तो 'छी-छी' किए बिना न रहते। शानो का लंगड़ा चाचा शामूं जो उस का एक मात्र अभिभावक था उसे कई बार इसी बात पर मारता भी परन्तु वह रतन को किसी

दिन भी अकेला न रहने देती । कई बार तो कुर्ते के नीचे बिना पाजामा पहने ही वह रतन के साथ दूर-दूर तक निकल जाती ।

रतन चला गया तो शानो एक दम गम्भीर हो गई । मानो वह बचपन की सीमाओं को लांघ कर एक दम युवा हो गई । अब बिना पाजामे के रहना तो क्या बिना दुपटा सिर पर रखे पानी भरने भी न जाती । उस की इस मंथरता पर स्त्रियां हंसते हुए संकेत करने लगीं । परन्तु शानो किसी बात का बुरा न मनाती । प्रायः लछमी के पास जा कर बैठी रहती । दोनों एक दूसरे की हृदय वेदना से पूर्ण परिचित थीं । दोनों को एक दूसरे से अपार सहानुभूति थी ।

इन छः वर्षों में शानो पूर्ण युवा हो गई । देह गदरा गई थी । उस का रोम-रोम रतन की प्रतीक्षा करता रहा था । रतन की स्मृतियों ने ही जैसे उस की देह में बूंद-बूंद उन तत्वों का संचार किया, जिन्होंने उस के वक्ष और कटि के बीच की अपार असमता को जन्म दिया । अब वह उस के साथ तालाब में तैर नहीं सकती, वृक्षों पर वंदरों के समान चढ़ नहीं सकती । उसे तो अब सकुचाना आ गया है - लजाना आ गया है ।

रतन को जब उस ने दूर ही से देखा तो पहले विश्वास ही नहीं हुआ । जब विश्वास हुआ तो हर्ष-विह्वलता से कुछ क्षणों तक यही सोच नहीं पाई कि क्या करे । फिर एकाएक उसे लछमी चाची का ख्याल आया, और बकरियों को मन्दिर के बाड़े में छोड़ गांव की ओर भागी ।

जब रतन घर के समीप नाले का पुल पार करने लगा तो वह पिछाड़े से अपने घर की ओर भाग निकली । इतनी शीघ्र वह रतन

का साक्षात् सहन नहीं कर सकती थी। अपने घर पहुँच कर उस ने चाचा से कहा, "रतन आ गया है।"

शामू ने साश्चर्य उस की ओर देखा, कुछ क्षण देखता ही रहा। फिर पूछा, "रतन आया है?"

"हा" शानो की आंखों से जो प्रकाश फूट रहा था वह दिव्य था।

"मैं अभी आता हूँ उस से मिल कर" कह कर शामू लंगड़ाते हुए बाहर निकल गया।

शानो जरा सम्भलने के लिए खाट पर जा लेटी। भुजाओं को वक्ष पर बांधे वह करवटें लेने लगी। अतिरिक्त विह्लता से वह सम्भल नहीं पा रही थी। काफी देर बाद वह कोठरी से बाहर निकली, अभी उसे अपनी बकरियां लेने दूर ऊपर मन्दिर तक जाना था।

रतन सत्तू खाता रहा, लछमी उस की ओर देखती रही।

कटोरे की लस्सी समाप्त करते हुए रतन ने कहा, "माँ इन्हीं सत्तुओं और लस्सी के लिए मैं वहां तरस गया था। पलटन में तो हमें केवल चाय ही मिलती थी। आ हा ऽऽ—क्या चाय होती है। थोड़ी सी अंग्रेजी चाय अपने साथ ले आया हूं। अपने हाथों बना कर पिलाऊंगा तुम्हें।"

लछमी की हंसी फूट निकली, कहा, "फिर तो तू यह भी कहने लगेगा," ला मां तुम्हें रोटियां सेंक दूं। पलटन में ऐसी रोटियां बनती हैं।"

अब के रतन भी हंस पड़ा। लछमी ने पूछा, यह तो तुम ने बताया नहीं तू रहा कहां-कहां ?"

रतन ने छाती फुलाते हुए कहा, "कौन सी जगह का नाम लूं मां। यहां से जा कर कुछ महीने तो पहले जम्मू में ही रहा। वहां एक हलवाई की दुकान पर काम किया। आ हा ऽ ऽ—कैसी-कैसी मिठाईआं बनती थीं वहां। क्या खुश्बू उड़ती थी उन की। तुम सूंघों तो बेहोश हो जाओ। थालों में पड़ी हुई वे मिठाईयों में घण्टों देखता रहता था। अभी तक मुझे याद है कि उन्हें किस ढंग से सजाया जाता था। नीचे के तीन थालों में कलाकंद, बर्फी और बेसन रखा जाता था, ऊपर पतीसा, लड्डू और जलेबियों के थाल धरे जाते। फिर उस के ऊपर गुलाबजामन और रसगुल्लों के दो थाल। एक बार में दुकान में अकेला था। मालिक कहीं काम से गया हुआ था। मैं गद्दी पर बैठा था कि ग्राहकों को निबटाऊं। परन्तु मेरी नज़रें तो ऊपर गुलाबजामनों के थाल पर थीं। मेरी नज़रें उस ओर से हटती न थीं। अचानक, देर बाद जब पीछे मुड़ कर देखा तो उसी बाज़ार का एक आवारा सांड बर्फी का पूरा थाल खा चुका था, और कलाकंद पर भी मुंह मारने की सोच रहा था। मैं घबरा गया, क्योंकि दुकान का मालिक बड़ा सख्त आदमी था। उस के आने से पहले ही मैं वहां से ऐसा दुम दबा कर भागा कि पीछे मुड़ कर देखने का साहस ही नहीं हुआ।"

रतन की यह कहानी सुन कर लछमी हंसी से लोट-पोट हो गई।

रतन ने फिर कहा, 'जम्मू से मैं अमृतसर चला गया। वहां एक कपड़ों के व्यापारी के घर में नौकरी कर ली। मां तुम्हें क्या बताऊं

कि वहां कपड़ों की कितनी गांठें पड़ी रहती थीं। तुम तो सोच भी नहीं सकती। यानी—यों समझ लो अगर इस सारे गांव को उन कपड़ों में लपेट दिया जाए तो पता न चले कि यह गांव भी कहीं है या नहीं, और माँ वह व्यापरी इतना मोटा था इतना मोटा कि क्या बताऊं। वह चौबीस घण्टे घर या दुकान पर लेटा या बैठा रहता था। चलना तो पड़ता ही नहीं था उसे। उस का पेट इतना फूल गया था इतना कि अगर वह यहां—हमारे गांव में आ जाए और उसे हमारे इस दरबाज़े में से गुज़रना पड़े तो न गुजर सके। या तो यह दरबाज़ा तोड़ना पड़े या वह अपना पेट बाहर ही छोड़ कर आए।"

लछमी ने हंसते हुए कहा, "बेटा, वह सेठ भला यहां क्यों आने लगा?"

"मैंने तो एक मिसाल दी मां। वैसे तो वह अब है ही कहां? वह तो मर चुका।"

"मर चुका?" लछमी को दुःख हुआ।

"हाँ! मेरे वहां होते ही मरा। डाक्टरों ने कहा कि वह ज्यादा मोटा हो गया था। चर्बी ज्यादा बढ़ गई थी इस लिए मर गया वह।"

"भगवान की लीला है बेटे।" लछमी ने दीर्घ श्वास ले कर कहा, "हम रूखी सूखी खा कर मोटे नहीं होते, शायद इस लिए चाहने पर भी मर नहीं सकते।"

माँ की बात से सहसा रतन गम्भीर हो गया। कुछ क्षण बीतने

के बाद बोला, "मां मैं तो यह सोच रहा हूँ धान कूट-कूट कर तूने अपना यह क्या हाल बना लिया है ?"

लछमी ने उदासी भरे स्वरों में कहा, "पेट की आग तो बिना हाथ हिलाए नहीं बुझती बेटा। जीने के लिए तो कुछ करना ही पड़ता है। जीना भी क्या था बेटा, एक आशा थी कि तू लौट कर आएगा और कुछ वर्षों तक तू न आता तो पता नहीं यह प्राण भी अटके रहते या नहीं।"

रतन का मन अति वेदना से भर गया। कुछ कहा नहीं गया उस से।

लछमी बोली, 'अब यदि तुम मुझे छोड़ कर जाओगे तो सचमुच ही जी न सकूंगी। दुबारा मेरा मुंह न देख पाओगे तुम।"

वातावरण फिर बोझिल हो गया था।

उसी समय बाहर से शामू की आवाज़ सुनाई दी, "लछमी सुना कि रतन आया है" कहते हुए वह भीतर आ गया।

लछमी ने तुरंत आधा घूंघट खींच लिया, और वहां से उठ खड़ी हुई।

"चरण बंदना चाचा" रतन ने कहा।

"जीते रहो, जीते रहो" कहते हुए शामू एक ओर पीढ़ी पर बैठ गया। बैठ कर कहा, "भई तुम तो गांव से यों भागे—यों भागे—यों—जैसे—"

"गधे के सिर से सींग" रतन ने शामू की बात पूरी की, और दोनों एक साथ हंसने लगे। लछमी भी आधा घूंघन खींचे मुस्कराती हुई बाहर निकल गई।

शामू ने कहा, "वहां जा कर गांव की खबर ही नहीं ली तुम ने ?"

"शहरों में जा कर गांव भूल जाते हैं चाचा। मां की याद बहुत आती थी सो आ गया छुट्टी ले कर।"

"छुट्टी ले कर ? क्या लछमी अब तुम्हें वापस जाने देगी ? हम भी तो यही चाहते हैं कि अब तुम यहीं रहो"।

"तुम तो इस लिए चाहते हो चाचा कि बहुत दिन हो गए तुम्हें अपने हाथों को आज़माए हुए। मेरे सिवा भला और कौन है जिसे तुम हाथ खोल कर पीट सको।" रतन की इस बात में सचमुच ही छिपा-छिपा दम्भ था। इस समय वह छाती चौड़ी करके, फौजी वर्दी पहने अकड़ कर बैठा हुआ था, और शामू प्रायः बूढ़ा हो चुका था, अति कुरुप, पीठ जरा झुकी हुई, अपनी एक छोटी टांग को सहलाए जा रहा था। उस ने रतन की बात में जैसे एक ललकार का आभास पाया। परन्तु वह गांव का पुराना लम्पट था, खिसिया कर बोला, "अरे बेटा क्या बात करते हो तुम भी। उन दिनों तो तुम छोटे थे बहुत, और फिर मैं अकेले तुम्हीं को नहीं पीटा करता था, शानो भी तो कम मार नहीं खाती थी मुझ से।"

'शानो !" रतन के मस्तिष्क में क्षण भर में सहस्रों बार यह शब्द गूंज गया।

"शानो कहां है चाचा ?" रतन ने पूछा।

"अरे उस ने तो मुझे सुनाया तुम्हारे बारे में कि तुम आ गए।"

"शानो ने?" रतन को अचम्भा हुआ, "मुझे तो वह कहीं नहीं मिली।"

"कहीं देख लिया होगा। अब तो बड़ी हो गई है। शरमाती होगी।"

"बहुत बड़ी हो गई है क्या?" रतन को यह सुन कर भी अचम्भा हुआ।"

"अरे बहुत बड़ी क्या होगी, अभी तो उस का ब्याह भी नहीं किया मैंने।"

"ब्याह!" रतन चौंक पड़ा।

शामू को रतन के अचम्भित होने का मजा आ रहा था। उसी समय बाहर से पंच मामा की आवाज सुनाई दी।

"रतन, ओ भई रतन।"

शामू अविलम्ब उठ खड़ा हुआ, "लो भई पंच महाशय आ गया, मैं तो चलता हूँ।" कह कर शामू द्वार की ओर मुड़ा। रतन यह देख कर बड़ा हैरान हुआ कि द्वार में शामू चाचा और पंच मामा दोनों की भेंट हुई परन्तु दोनों ने देख कर भी एक दूसरे को नहीं बुलाया। एक बाहर चला गया एक अन्दर आ गया।

"चरण बंदना मामा।"

"जीते रहो, जीते रहो बेटा" कह कर पंच मामा उसी पीढ़ी पर बैठ गया।

रतन ने देखा इतने वर्षों में भी मामा की चाल-ढाल में कोई अन्तर नहीं आया। वैसा ही भरा-भरा, कुछ थुल-थुल करता शरीर, चेहरे पर कुलीनता की एक छाप-सी, आंखों में निरीह भाव, बालों की सफेदी में बड़प्पन झलकता हुआ। जगत-मामा प्रसिद्ध हैं। गांव के हर छोटे-बड़े झगड़े का निर्णय करते हुए पंच नाम हो गया है। असली नाम किसी को ज्ञात नहीं। झगड़ा चाहे ज़र (दौलत), ज़न (स्त्री), ज़मीन किसी का भी हो पंच मामा से न्याय करने में कभी चूक नहीं हुई। परिवार में खुद के अतिरिक्त केवल एक स्त्री है, संतान कोई नहीं, इसी लिए जो थोड़ी सी भूमि है उसी की उपज से निर्वाह हो जाता है। अधिक की चिंता नहीं, और जहां अधिक की चिंता नहीं, वहां न्याय प्रियता तो होगी ही।

रतन के हृदय में भी मामा के प्रति बड़ा आदर है।

पंच मामा ने बैठते ही पूछा, "कहो बेटा परदेश में तुम सकुशल तो रहे?"

रतन ने बड़े उत्साह में उत्तर दिया, "मामा, दो वर्ष पलटन में रह कर आया हूं, देखो कितना तगड़ा हो गया हूं।"

"अच्छा घूम-फिर कर तो देख ही लिया होगा।"

"यों समझो मामा सारा हिन्दुस्तान देख लिया है, बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े-बड़े शहर देख लिए तो बाकी क्या रहा।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। वाह ! क्या कहने तुम्हारे।"

रतन ने हंसते हुए कहा, "मामा कहो तो अब तुम्हें भी साथ ले चलूं।

'अरे वाह बेटा अब बूढ़ों से भी मसखरी।"

"इस में मसखरी की बात नहीं मामा। तुम्हें तो कंधे पर भी बिठा कर ले जा सकता हूँ।"

रतन की बातों से मामा का भोला मन बल्लियों उछलने लगा। फिर सहसा उन के मुख पर उदासी छा गई। बड़े धीमे स्वरों में बोले, "बेटा कभी हम ने भी इन पहाड़ों की कैद से निकलना चाहा था, परन्तु इस लंगड़े शामू ने बीच में अपनी टांग अड़ा दी। न खुद गया न मुझे जाने दिया। बहुत पुरानी बात है, तब पता नहीं क्यों इन पहाड़ों का मोह-पाश टूट गया था। पर तू तो उस समय पैदा भी नहीं हुआ होगा।"

"पंच मामा, शामू चाचा तो बहुत पुराना मित्र हैं न तुम्हारा ?"

"हां बेटा, बहुत छोटे-छोटे थे, हम तभी से मित्र हैं। परन्तु अब तो वह मुझे अपनी जान का दुश्मन समझता है।"

रतन ने कहा, "हां मामा मैं भी सोच रहा था कि कुछ बात जरूर है, जब तुम आए तो वह उठ कर चल दिया। तुम से कोई बात भी नहीं की। ऐसी क्या बात हो गई है ?"

"बात बहुत बड़ी है बेटा, वह इस उमर में अपना ब्याह कर रहा है, और मैं उसे इस बात से मना करता हूँ।"

रतन ने मज़ाक में कहा, "अरे चाचा की लंगड़ी टांग देख कर किस बुढ़िया का मन ललचा गया ?"

"बुढ़िया ?" मामा ने खोखली हंसी हंसते हुए कहा, "वह तो किसी जबान लड़की से ब्याह कर रहा है।"

"जबान ?"

"हां, इसी बात का तो दुख है।"

तभी लछमी सिर पर पानी का एक घड़ा रखे भीतर आई। पंच मामा की आबाज़ सुन कर उस ने बाहर ही से घूंघट निकाल लिया था। मामा ने उठते हुए कहा, "अच्छा मैं चलता हूं, अपनी मामी से मिलने के लिए आना।"

"शाम को आऊंगा।" रतन ने कहा।

मामा चले गए।

"शानो नहीं मिली मां" रतन ने कहा।

"शानो ?"

"हाँ।"

"अरे सब से पहले तो मुझे उसी ने बताया था कि तुम आ रहे हो। उस ने तो तुम्हें मन्दिर के नीचे ही देख लिया था। वह वहां बकरियां चराने के लिए गई हुई थी। तुम्हें देखा तो बकरियों को मन्दिर के बाड़े में बंद करके भागती हुई मुझे सुनाने के लिए आ गई।

अभी बावड़ी के पास मुझे मिली है । बकरियों को लाने के लिए मन्दिर की ओर जा रही थी ।"

रतन उसी क्षण बाहर आने लगा । फिर रुक गया । मां से पूछा, "मां क्या यह सच है कि शामू चाचा अपना ब्याह कर रहा है ?"

"हां" लछमी ने उत्तर दिया । परन्तु रतन ने देखा उत्तर देते हुए मां का चेहरा पीला पड़ गया है । कुछ समझ न सका । शानो से मिलने की उत्कंठा अब चरम सीमा पर पहुंच गई थी । वह बाहर निकल आया । फिर भी मन में एक फाँस सी रह गई ।

शानो ने बाड़े में से बकरियों को निकाला और पतली सी छड़ी के साथ हांकती हुई उन्हें जल्दी-जल्दी गांव की ओर ले चली । हर्ष और आवेग से उस समय उसे लग रहा था वह उस धूलिया पगडण्डी पर नहीं, बल्कि आकाश गंगा के पथ पर उड़ी जा रही है ।

उस समय संध्या का सिंदूर बिखर रहा था । सूरज पश्चिमी शिखरों का मुकुट बन गया था । देवदार के वृक्ष उजाले को पीते जा रहे थे । गांव अभी दूर था । बकरियां छड़ी की मार सहते हुए भी इधर उधर झाड़ियों में मुंह मारते हुए चल रही थीं । शानो अपने ही विचारों में डूबी हुई थी कि अनायास मुंह से चीख निकल गई । किसी ने उस की चोटी खींच ली थी । गिरते-गिरते पीछे मुड़ कर देखा तो बड़ी-बड़ी मूंछों सहित मुस्कराता हुआ रतन कह रहा था, "पकड़ ही लिया न मैंने तुम्हें ?"

"हाय राम ! इतने बड़े हो गए हो तुम ? छोड़ो मेरी चोटी ।" कहते हुए उस ने रतन की ओर देखा । रतन को महसूस हुआ उसे एक दृष्टि में ही उस ने अपना खोया हुआ सर्वस्व पा लिया है ।

रतन को अपने इतने समीप पा शानों सम्भल ही नहीं रही थी।

"अब तो यह तुम्हारी चोटी अलग हो कर ही रहेगी।" रतन ने चोटी को ज़रा और खींच कर उसे और भी अपने समीप कर लिया। शानो को बाल खींचने से अतीव पीड़ा हुई, परन्तु उस से अधिक मिठास थी—एक उमाद था उस में।

बनते हुए बोली, "तुम कौन हो जी मेरी चोटी अलग करने वाले?"

"मैं?" रतन उसे और भी समीप ले आया, 'बहुत जल्दी भूल गई मुझे?"

"जल्दी नहीं पूरे छः वर्ष लगे हैं भुलाने में।" साथ ही छः उंगलियां भी दिखा दीं उस ने।

"बहुत ज्यादा होते हैं छः वर्ष?"

"नहीं, बिताते पता भी नहीं चलता।"

"सच?"

शानो ने कोई उत्तर नहीं दिया तो रतन ने उस की चोटी छोड़ कर उसे दोनों कंधों से पकड़ लिया। देखा शानो की आंखों में आंसू भर आए थे।

रतन ने कहा, "शानो तुम्हारी याद बहुत आती थी। केवल मां से और तुम से मिलने के लिए आ गया हूं।"

शानो ने आंखें पोंछते हुए कहा, "अब भी क्या करना था यहां

ग्रा कर। धान कूट-कूट कर ग्रौर चक्की पीस-पीस कर तो मां के हाथों के छाले भी सूख गए ग्रौर मेरी ग्रांखों के ग्रांसू भी वर्षों बाद ही ग्राज बहे हैं। यह भी सूख चुके थे।"

"इसी लिए तो तुम्हारी ग्रांखों में इतनी चमक ग्रा गई है।" रतन ने उदासी-भरा तनाव दूर करने के लिए मज़ाक सा किया।

"ग्रौर मुंह भी तो खिल गया है मेरा।"

"कब से ?"

"ग्राज ही से।"

"बड़ी शरीर हो तुम।" रतन ने हंस कर कहा।

इसी तरह बातें करते हुए दोनों गांव की ग्रोर चलने लगे। बातें थीं कि समाप्त होने में न ग्रा रही थीं। बकरियां उन के ग्रागे-ग्रागे चुप-चाप चल रही थीं। सहसा सूरज एक ऊंची चोटी के पीछे गया, ग्रौर एकाएक ग्रास-पास वायुमण्डल में काजल सा घुला लगने लगा। दोनों एक-दूसरे के ग्रौर भी पास-पास हो कर चलने लगे।

शानो ने पूछा, "रतन सच-सच कहना, क्या मेरी याद ग्राती थी तुम्हें ?"

"फिर ग्रौर कौन था जिसे मैं याद करता, या तुम या मां।" शानो चुप रही तो रतन ने पुन: कहा, "मां कह रही थी कि मेरे बाद तुम ने उसे बड़ी ढाड़स दी।"

"मैं क्या ढाड़स देती, मेरा भी कौन है ? चाची को ही मां के

समान समझती हूं । उसी के पास जा कर बैठी रहती थी।" शानो ने कहा।

तभी वे नाले के पास पहुँच गये। नाले के पार समाने ही रतन का घर था, परन्तु शानो को बाईं ओर अभी काफी आगे जाना था। वह उस ओर जाने लगी कि रतन को फिर शामू चाचा की बात याद आ गई।

"सुनो तो" रतन ने कहा। शानो रुक गई।

"सुना है शामू चाचा ब्याह कर रहा है अपना। यह सच है ?"

'मुझे इस समय देर हो रही है मैं चलती हूँ।" कह कर शानो जल्दी से आगे बढ़ने लगी। रतन की बात सुन कर उस के चेहरे का रंग ही बदल गया था।

रतन बड़ा हैरान हुआ। माँ भी तो यह बात सुन कर इसी प्रकार अव्यवस्थित हो गई थी। उस ने फिर आगे बढ़ कर कहा, "मेरी बात का तुम ने उत्तर नहीं दिया।"

"अंधेरा हो गया है, मुझे घर पहुंचना है।"

"देखता हूँ कैसे जाती हो तुम।" कह कर रतन ने फिर उस की चोटी पकड़ ली।

"अरे अरे क्या हो गया है तुम्हें, कोई देख लेगा तो ? छोड़ो चोटी। मुझे क्या अभी तक बच्ची ही समझ रखा है ?"

"और क्या बच्ची ही तो हो तुम।"

"यह बात अच्छी नहीं।"

"क्या बात अच्छी नहीं ?"

रतन ने उसे यों गम्भीर देख उसकी चोटी छोड़ दी।

शानो ने कहा, "तुम बहुत देर बाद गांव लौटे हो, इसी लिए तुम बहुत कुछ भूल गये हो।"

"क्या भूल गया हूं ?"

"जो कुछ यहां होता है।"

"क्या होता है यहां ?"

"फिर बताऊंगी।" कहकर शानो छड़ी से बकरियों को हांकती हुई चली गई। रतन क्षुब्ध-सा थोड़ी देर वहाँ खड़ा रहा, फिर घर की ओर चल पड़ा।

घर आकर देखा, मां रोटी बना रही थी।

आते ही कहा, "मां मुझे शानो मिली थी।"

"क्या कहती थी ?"

"कुछ नहीं बस पुरानी बातें याद करते रहे। हां जब शामू चाचा के ब्याह के बारे में मैंने पूछा तो अजीब-सी बातें करने लगी। कुछ भी नहीं बताया उसने और चली गई।"

"अब बताने योग्य कुछ रहा भीं नहीं बेटा।" लछमी के स्वर में वेदना थी।

"ऐसी क्या बात हो गई है मां ?" रतन ने समीप आकर पूछा।

"शामू जो अपना ब्याह रचा रहा है, साथ ही शानों का बलिदान भी दे रहा है। सुना है दूर मैदानों में लोग कन्यादान करते हैं, परन्तु

यहां तो कन्याओं का बलिदान दिया जाता है। इन पहाड़ों में जब तक लड़की के बदले में लड़की न दी जाए किसी का ब्याह नहीं होता। और यदि किसी के पास देने योग्य कोई लड़की हो तो फिर वह खुद चाहे शामू जैसा बूढ़ा लंगड़ा और कुरूप ही क्यों न हो, उसे अपना ब्याह करने में कोई कठिनाई नहीं होती। शामू के पास शानो है, उसने उसे पाला भी इसी लिए है। पार गांव में जहां शामू ने अपनी बात पक्की की है वहां उस घर में एक तो वह जवान लड़की है, जो शामू की पत्नी बनेगी, बदले में उसी लड़की के भाई से शानो का ब्याह होगा जिस की उमर इस समय केवल आठ वर्ष की है। यहां तो ऐसा ही होता है।"

लछमी जानती थी रतन पर इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी। परन्तु जो भी हो, एक ही बार हो जाए—यही सोच उसने जान बूझ कर सारी बात सविस्तार बता दी। रतन तो जैसे पत्थर हो गया यह सुन कर। सचमुच वह यह बात भूल चुका था कि यहां 'दोहरी' के विवाह होते हैं। शानो का विवाह हो रहा है एक आठ वर्ष के बालक से—उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि मां से क्या कहे। मां ने ठीक ही कहा था कि अब कहने योग्य रहा ही क्या? फिर भी उससे यह पूछे बिना न रहा गया, "यह सब निश्चित हो चुका है?"

"हां, अगले महीने ही तो ब्याह का लग्न है।"

एक बात रतन की समझ में नहीं आ रही थी। पूछा, "मां, इस ओर तो शामू अपने लिए शानो का जीवन तबाह कर रहा है, परन्तु उस ओर के लोगों का इसमें क्या हित है?"

लछमी ने समझाते हुए कहा, "वह लड़की जवान हो चुकी है, उसके विवाह का समय यही है।। यदि उसका विवाह अभी कर दिया

जाए और उसके छोटे भाई का नहीं तो फिर भाई के जवान होने पर उस का ब्याह नहीं हो सकेगा। अब यही तो होगा कि शानो उस के बड़े होने की प्रतीक्षा करेगी।" लछमी के अंतिम वाक्य में जहरीला व्यंग्य था।

वितृष्णा से रतन का मन भर गया। यह क्या हो रहा है यहां ? कैसे अमानुष हैं ये सब ? उस ने मां से फिर पूछा, "मां इस 'दोहरी' के बिना यहाँ किसी का ब्याह नहीं होता ?"

"हां, यदि गांठ में पैसे हों। शामू के पास पैसे होते तो उस ने कब का ब्याह कर लिया होता। यौवन बीत गया उस का तो फिर उस ने शानो को पाला, केवल इस आशा पर कि यह बड़ी होगी तो अपना ब्याह भी हो जाएगा।"

रतन इस से अधिक कुछ सुन नहीं सका। उस के मन, मस्तिष्क और अंग २ में एक पीड़ा व्याप्त गई थी। वह उठा और बाहर आंगन में आ खड़ा हुआ। उसे याद आया शानो ने उस से कहा था, "तुम भूल गए हो जो यहां होता है।" सचमुच ही वह भूल गया था। परन्तु उसे विशेष पता भी तो नहीं था। जब गांव से गया तो उस का बचपन ही था। तब सारा दिन शरारतें करने के अतिरिक्त कोई काम न होता था, इन बातों की ओर उसने कब दयान दिया था।

परन्तु क्या वह सब उसकी आंखों के सामने ही होगा ? शानो चुप-चाप एक आठ वर्ष के बालक से ब्याह दी जाएगी ? बूढ़, लंगड़े शामू के धर जवान लड़की आ जाएगी ? क्या वह यह सब सहन कर सकेगा ?

सहन नहीं करेगा तो फिर क्या करेगा ? ऐसा तो न जाने कब से यहां होता आ रहा है। ये घराट (पन चक्कियां) तो सदियों से

यहां चल रहे हैं। जीवन और यौवन सदियों से इनमें पिस रहे हैं। किसमें इतना बल है कि इन चलते घराटों को रोक सके।

———

दो—

शानो को बचपन ही से वह गीत बड़ा अच्छा लगता था—"खूर्ये'र खड़ोतियै गोरिए नारिए कैंत होई ऐं दिलगीर ओ," (कुएं पर खड़ी हे सौंदर्यमयी तुम उदास क्यों हो ?) इस गीत का दर्द उसे क्या पता था कि उसी के दिल का दर्द बन जाएगा।

लाम पर जाते हुए सिपाही ने उस सौंदर्यमयी को कुएं पर उदास देखा तो पूछा, "क्या तुम्हारा बहुत दूर है, या तुम्हारी सास तुम्हें बहुत तंग करती है, जो तुम इतनी उदास हो ?"

नायिका ने उत्तर दिया, "न मेरा मायका दूर है, न सास मुझे तंग करती है; मेरे दुःख का कारण यह है कि मैं स्वयं तो बड़ी हूं, मेरा पति मुझ से बहुत छोटा है।"

सिपाही ने कहा, "उस छोटे पति को छोड़ कर मेरे साथ चल पड़ो, मैं तुम्हें ढेर से गहने दूंगा, सोने-चांदी से लाद दूंगा।"

तब अपनी विवशताओं में जकड़ी नायिका ने उसके मन का कपट जान लिया, बोली, "तुम्हारे गहनों को आग लगे, मैं तो इस आशा पर जी रही हूं कि दीपक की लौ के समान मेरा छोटा पति भी दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।"

जिस दिन शामू चाचा विवाह की बात पक्की करके आया था, तब शानो सारा दिन यही गीत गाते हुए रोती रही थी। उसे महसूस होने लगा था कि वह स्वयं ही उस गीत की नायिका है। तब उसे

एक सांत्वना मिली थी गीत के स्वरों से। उसके मन में भी उसी आशा पर जीने का साहस पैदा हो गया था कि दीपक की लौ के समान ही छोटे-बड़े होते जाते हैं।

परन्तु आज उसके पास भी एक सिपाही आ गया है। अभी सिपाही को उसके दिल का दर्द मालूम नहीं हुआ; उसने अभी पुकारा नहीं उसे; सोने-चांदी का कोई प्रलोभन भी नहीं दिया। परन्तु इस सिपाही को प्रलोभन देने की आवश्यकता भी नहीं। शानो के लिए स्वयं उसका अस्तित्व सबसे बड़ा प्रलोभन है। वह तो उसका स्वामी है, कब से ? यह तो वह स्वयं भी नहीं जानती। वह उसके लिए एक तो क्या हज़ारों उभरती हुई ज्योतियों को न्योछावर कर सकती है। पर वह सिपाही उसे अपने साथ चलने के लिए कहेगा ? उसे तो अभी इतना भी नहीं पता कि वह किस भंवर में फंसी हुई है।

आज उसने जल्दी ही शामू चाचा को खाना खिला दिया। स्वयं भी सारे काम-काज से यथा शीघ्र निबट कर बकरियों को साथ ले मन्दिर की ओर निकल गई। उसका हृदय कह रहा था रतन अब तक अवश्य वहाँ पहुँच गया होगा।

रतन सारी रात सो न सका। वह शानो के दुःख को ही थाहता रहा। वह सोचता रहा उसका अपना देश ही कैसा है, जहां विवाह नहीं होता एक व्यापार होता है शरीरों का, प्राणों का। उसने नागरिक तथा सैनिक जीवन में बदलते हुए मूल्यों को अनुभव किया था। ज़िन्दगी की बदलती धारा की तरंगों का स्पर्श किया था। वह रंग न देखा होता तो शायद शानो का दुःख उसके लिए साधारण सा होकर रह जाता। परन्तु अपनी छटपटाहट का कोई भी इलाज उसे सूझ नहीं रहा था। गाँव का तो समाज ही अलग है। यहाँ लोग

रूढ़ियों में जकड़े हुए हैं। किसी भी रूढ़ी का विरोध करने का अर्थ है इस समाज से वहिस्कृत हो जाना। फिर क्या वह शानो को चुपके से अपने साथ ले जाए? नहीं, तब उसकी मां का क्या होगा, वह इस गाँव में नहीं रह सकेगी। फिर क्या किया जाए? सारी रात यही सोचते-सोचते व्यतीत हो गई।

आखिर उसने यही निर्णय किया कि चाहे उसे अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़े, वह न तो शानो का विवाह होने देगा, न उसके बदले में शामू का। इसके लिए चाहे उसे सारे गांव का ही विरोध क्यों न करना पड़े, वह मुकाबला करेगा। और चाहे कोई भी उसका साथ न दे, उसकी माँ और पंच मामा अवश्य उसका साथ दें गे।

सवेरे खाना खाते ही वह मन्दिर के बाहर बैठ कर अपना वही भूला हुआ गीत गाने लगा—'जीना पहाड़ें दा जीना।'

शानो ने दूर ही से उसकी आवाज़ सुन ली। वकरियों को छड़ी से हांकती हुई वह धीरे-धीरे चढ़ती आ रही थी।

रतन ने दूर ही से शानो को देखा तो मुस्कराते हुए उठ खड़ा हुआ।

शानो ने समीप आकर कहा, "तुम यहाँ कैसे आ गये?"

"किसी से मिलने आया था" रतन ने बनते हुए कहा।

"किससे?" शानो ने कनखियों से देखते हुए पूछा।

"अपने एक मित्र से, जो बाहर से बड़ा भोला लगता है, भीतर से बड़ा चालाक है।"

शानो ने लजा कर मुंह दूसरी ओर कर लिया।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर रतन ने शानो के समीप जाकर कहा, "शानो मुझे सब पता चल गया है कि शामू चाचा कैसे अपना ब्याह कर रहा है।"

शानो दूसरी ओर मुंह किए बैठी रही। रतन ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर पुनः कहा, "मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।"

शानो ने कातर दृष्टि से रतन की ओर देखते हुए कहा, "क्या कर सकते हो तुम ?"

"करने को बहुत कुछ कर सकता हूं; तुम्हें यहां से भगा कर ले जा सकता हूँ। परन्तु इस तरह मां का गांव में रहना कठिन हो जाएगा। गांव वाले ताने दे दे कर मार दें गे उसे। हमारे बिना वह अकेली रह भी न सकेगी।"

"तुम सच कहते हो हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। मेरे प्राण भी जाएं तो भी मैं चाची को कोई दुःख न पहुँचाऊंगी। परन्तु रतन ! क्या मेरे दुःख का अनुमान तुम लगा सकते हो ?" कहते हुए शानो सुबकने लगी।

रतन उसके और समीप आ गया। बोला, "शानो तुम विश्वास करो तो जो तुम्हारा दुःख है वही मेरा भी। परन्तु कहूंगा रोने से कोई लाभ नहीं।"

"कभी-कभी रोने के सिवा और कोई चारा भी नहीं रहता।"

"नहीं, मैंने सोचा है मैं इसका विरोध करूंगा। शामू चाचा को न ब्याह करने दूंगा, न तुम्हारा होने दूंगा। मैं अभी इस सम्बन्ध में पंच मामा से मिलने जा रहा हूँ।"

"पंच मामा बहुत समझा चुका है चाचा को। परन्तु चाचा नहीं मानता।"

"जब सब लोग चाचा से कहेंगे, तब उसे मानना ही पड़ेगा।"

"सब लोग भला क्यों ऐसा करने लगे?"

"मैं खुद सब लोगों से मिलूंगा। तुम देखती रहो।"

दोनों हृदयों में ऐसा तनाव था कि अधिक बात भी क्या करते। रतन के मन में एक उथल-पुथल मची हुई थी। समय मौन व्याकुलता में कट गया। दोपहर ढले दोनों वहां से आ गए। शानो अपने घर चली गई और रतन पंच मामा से मिलने के लिए चल पड़ा।

पंच मामा उस समय शामू से मिलने उसके घर पहुंचा। उसे देखते ही शामू के माथे पर बल पड़ गए।

"आओ, आओ पंच महाशय" व्यंग्य भरे लहज़े में शामू ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा।

मामा उसी सीधी-सादी चाल से एक पीढ़ी पर जाकर बैठ गया। शामू मुंह से धुएं के गुब्बारे छोड़ता कनखियों से उसकी ओर देखता रहा।

"शामू, मैं आज तुमसे फिर यही कहने आया हूँ कि अपनी शराब की भट्टी तोड़ दो।" मामा ने बैठते ही कहा।

"क्यों?" शामू ने तीखी नज़रों से बैठते हुए कहा।

"बहुत बुरी बात है यह।"

"मैं सारी उमर पीता रहा हूं तो अब कैसे छोड़ दूं।"

"लेकिन तुम तो गांव के लड़कों-बालों को भी यही लत लगा रहे हो।"

"मेरे कहने से कोई नहीं पीता पंच ! सब अपनी मरज़ी से पीते हैं।"

"तुम उन्हें देते ही क्यों हो ?"

"मेरा तो धन्धा है यह। तुम नहीं जानते ?"

"बहुत बुरा धन्धा है।"

"होगा, परन्तु चलता बहुत है।" शामू ने हुक्के का एक लम्बा कश खींचते हुए कहा, और खाँसने लगा।

"न जाने क्या हो गया है तुम्हें शामू ?" मामा ने दुःख भरे स्वर में कहा।

"मुझे कुछ नहीं हुआ, मैं तो आरम्भ से ही ऐसा था। तुम न जाने क्यों साधु होते जा रहे हो।"

"जमाना बदल गया है शामू, कुछ न कुछ तो हमें बदलना ही चाहिए।"

"बदलने से तुम्हारा मतलब है हम अपना सब कुछ छोड़ दें ? हमारे पुरखे जो करते आए हम वह बिल्कुल न करें ?"

"नहीं, हमें वही करना चाहिए जो बिल्कुल ठीक हो।"

"तो फिर मुझे तुम्हीं बता दो कि क्या ठीक है।"

"तुम जो अपना ब्याह कर रहे हो यह ठीक नहीं।" आखिर मामा ने वह बात कह ही दी, जिसके लिए विशेषकर वह यहां आया था। परन्तु शामू ने उसकी बात सुनते ही हुक्का एक ओर रख दिया। क्रोधवश उसका समग्र शरीर कांपने लगा। चेहरे की करूपता बढ़ गई। अपनी लंगड़ी टांग को भूमि पर रख कर बोला।

"पंच मैं आज आखिरी बार तुमसे कह रहा हूँ। मेरे इस मामले में फिर कभी टांग न अड़ाना। अब तक मैंने तुम्हे कुछ नहीं कहा, इसलिए कि तुम सब कुछ जानते हो। तुमसे कोई बात छिपी नहीं। आखिर क्यों तुम ब्याह करने से रोक रहे हो ? मैं कोई नई बात नहीं कर रहा। यहां शुरू से ही होता आया है। मेरी उमर बड़ी है तो क्या हुआ। मैं जो कर रहा हूँ संतान के लिए कर रहा हूं। कितने वर्षों से यही लालसा मन में पाल रहा हूँ। ऐसा न करता तो मैं शानो को पालता ही क्यों ? उसे इतने लाड़-प्यार से बड़ा ही क्यों करता ? क्या तुम भी यही चाहते हो कि मैं बिना संतान के ही मर जाऊं ? मुझे कोई पानी देने वाला भी न हो पीछे।" कहते-कहते शामू के मुंह से जाग बहने लगी। मामा निर्निम आंखों से उसे देखने लगा।

उसी समय शानो बाहर से आ रही थी। द्वार के पीछे खड़े होकर उसने शामू की सारी बातें सुन लीं। उसके मन में एक विचित्र खलबली मच गई। वह भागती हुई अपनी कोठरी में जाकर सिसक-सिसक कर रोने लगी।

पंच मामा ने अपने सहज-गम्भीर लहजे में शामू से कहा, "तुम्हारे मन की लालसा अपनी जगह ठीक है, लेकिन सोचो इससे कितनों का आहित होगा, कितने जीवन तुम अपने लिए बरबाद कर दो गे।"

"मैंने सबके जीवन का ठेका नहीं ले रखा पंच। मुझ से अगर ईश्वर भी यह कहने के लिए आ जाए कि मैं ब्याह न करू तो मैं उसकी भी न मानूंगा।"

पंच मामा धीरे-धीरे पग उठाता बाहर आ गया। वह कुछ सोच नहीं पा रहा था कि आखिर होगा क्या—इस मामले में उसका क्या कर्त्तव्य है ?

भीतर शामू क्रोध में कांपता हुआ अपनी लंगड़ी टांग के सहारे खड़ा हो गया था।

रतन पंच मामा के घर पहुंचा तो वह घर पर नहीं था। पता लगाने के लिए वह ऊपर वाली बावड़ी की ओर निकल गया। वहां उसे एक वृक्ष के नीचे बैठे जगतू और मोहन मिल गये। दोनों रतन के लंगोटिए यार थे। कल उन्हें रतन के साथ अधिक मिल-बैठने का अवसर नहीं मिला था। इस समय भी वह खेतो से वापस आ कर रतन के घर की ओर जा रहे थे। रतन को देख कर दोनों की बांछें खिल गईं।

'अबे यार तू तो गांव में आकर भी हम से दूर भाग रहा है।" जगतू ने रतन के कन्धे पर भरपूर हाथ मारते हुए कहा।

'तुम्हीं तो दिखाई नहीं दिये सवेरे से।" रतन ने मन के कौतूहल को ज़रा समेटते हुए कहा।

"अबे हमें भी बनाने लगे तुम? जैसे तुम्हें सर्प-मन्दिर की ओर जाते हुए न देखा हो।" मोहन ने कहा। वह बात करने का अवसर कभी नहीं जाने देता।

"तुम दोनों से भला मेरी कौन सी बात छिपी है।" कह कर रतन ने हंसते हुए दोनों को अपने दाएँ-बाएँ बाहुओं में ले लिया, "चलो कहीं चल कर बैठें तो बात हो।"

"मेरे ही घर चलो," जगतू बोला, "अपने राम तो अकेले हैं।"

"और कहां जाएंगे भाई, वहीं तो रोज़ महफिल लगती है।" मोहन बोला।

"महफिल"। रतन ने आश्चर्य से भर कर कहा "कैसी महफिल?"

"गप-शप मारने की महफिल और कैसी महफिल। सारे दिन की थकान उतर जाती है।"

जगतू के घर में पहुँच कर मोहन ने रतन से पूछा, "भई रतन अब सुनाओ कोई शहर की बात। हम तो एक बार जम्मू तक ही गये थे। तुम तो, सुना है, बम्बई कलकत्ता भी देख आए।"

"अरे भाई वहां की क्या कहूँ? वे नगर तो देखने के लिए बने हैं। सुनने या सुनाने में बड़ा फर्क है। और फिर सुनोगे भी तो लगेगा मैं झूठ कह रहा हूँ। पहली बार तो स्वयं वे मुझे भी माया नगरियां ही प्रतीत हुई थीं।" यह कहते हुए रतन को महसूस हुआ वह बिल्कुल उसी प्रकार बातें कर रहा है, जैसे कभी स्वर्ण सिंह उसके सामने करता था। उसी की बातें सुन कर तो रतन को गांव से भागने की प्रेरणा मिली थी। फिर भी उसने अपने देखे हुए आश्चर्यों का वर्णन करना शुरू किया। उन आश्चर्यों से अधिक उसने इस बात का वर्णन करना शुरू किया कि उन्हें देख कर उसकी अपनी प्रतिक्रिया क्या थी। जगतू और मोहन दोनों बातें सुन कर विमूढ़ से होते जा रहे थे।

सहसा किसी ने उस कोठरी का दरवाज़ा खोला। रतन ने बात करनी बन्द कर दी, देखा शामू चाचा ने भीतर प्रवेश किया। भीतर आकर उसने रहस्यमय ढंग से दरवाज़े में से गर्दन निकाल कर एक बार बाहर गली में झांका, और फिर भीतर से किवाड़ों को उड़क दिया। रतन को देख कर उसने कहा, "अरे तुम आ गये? आज तो हम सबका निश्चय था कि तुम्हें बुलाएंगे। तुम भी क्या याद करोगे"—कहते हुए उसने पाजामे में से खोंसी हुई बोतल निकाली, और बात पूरी की— "कि शामू चाचा ने क्या फूल सी पिलाई थी। अरे बूढे

हो गए इस लाल परी को छानते-छानते ।" कह कर शामू उन तीनों के पास बैठ गया ।

रतन समझ गया कि अब यहां से निकलना बहुत मुश्किल है । फिर भी जब जगतू एक ओर पड़े हुए चार मिट्टी के कटोरे उठा लाया तो उसने यह कहने का साहस बटोरा, "नहीं भाई मैं तो पीता नहीं ।"

"अबे अब हम से बनना शुरू कर दिया ? जैसे हम कुछ जानते ही नहीं ।" मोहन ने कहा, "अभी ऐसी बातें कर रहे थे कि हमें सुन कर चक्कर आ गया, और अब कहते हो मैं पीता ही नहीं ।"

शामू ने बोतल खोली और हंसते हुए कहा, "बेटा जो एक बार पलटन में भर्ती हुआ फिर उसके लिए बाकी क्या रहा ?" कहते हुए उसने कटोरों में उड़ेलनी शुरू कर दी ।

रतन ने एक विस्तृत दृष्टि से उसकी ओर देखा । शामू के प्रति उसके मन में घृणा का कोई पारावार न था । थोड़ी सी वह यों भी पी लेता; सेना में रह कर उसने अनेक बार साथियों में बैठ कर रम पी थी; यहां तो उसका मन केवल शामू के साथ बैठ कर पीने को नहीं हो रहा था । परन्तु अब वह फंस चुका था । शामू ने कटोरे भरे तो जगतू ने सब से पहले रतन के सामने कटोरा पेश किया । रतन ने कटोरा हाथ में ले कर अपनी नाक के समीप लाया तो उसे बड़ी ही दुर्गंध आई । यह 'कन्ट्रीमेड'—और वह भी 'शामू मेड' इससे पहले उसने भला कहां पी थी ।

शामू ने रतन की ओर देख कर कहा, "अरे रतन इसे सूंघा नहीं जाता, पिया जाता है । यह शराब नहीं फूल है फूल ।" यह कहते हुए शामू ने अपना कटोरा मुँह के साथ लगा लिया, और एक ही बार में यों पी गया जैसे ठण्डी चाय का कप पिया जाता है ।

मोहन और जगतू ने अपने-अपने बाएं हाथ से अपनी-अपनी नाक को बंद कर के दाहिने हाथों से कटोरे मुंह से लगा लिए। रतन को उनकी ओर देख कर बड़ी हंसी आई, वह समझ गया दोनों नए खिलाड़ी हैं इस मैदान में। फिर उसने भी किसी न किसी तरह दो घूंट पी ली। पीते ही एक झटके के साथ लगा कि ज़मीन से दस हाथ ऊपर उठ गया है। जगतू और मोहन की ओर देखा तो वह बीस-बीस हाथ ऊपर उठ चुके थे।

"कहो कुछ पता लगा ?" कहते हुए शामू ने दूसरी बार अपना कटोरा भरा।

रतन ने उसके उत्तर में पूरा कटोरा खाली कर दिया। कुछ देर तक किसी ने किसी से कोई बात नहीं की। शामू दूसरा कटोरा भी चढ़ा गया। उसने रतन से फिर पूछा, "कैसी लगी ?"

रतन ने हवा में तैरते हुए कहा, "चाचा यह शराब तुमने निकाली है—बहुत अच्छी है। लेकिन तुम आदमी अच्छे नहीं हो।"

"क्या मतलब ?" शामू अभी पूरा नशे में नहीं था।

रतन तो आपे में नहीं था; लहरा कर बोला, 'मैंने कहा चाचा कि तुम अच्छे आदमी नहीं हो। देखो न इतने बूढ़े हो चुके हो, अपनी शक्ल भी नहीं देखते, और शोक चर्राया है दूल्हा बन कर घोड़ी पर बैठने का ?"

"अरे सूअर मुझे बूढ़ा कहता है ?" शामू ने उठ कर रतन को गले से पकड़ लिया, "अगर बूढ़ा हूं तो भी तुम जैसे लौंडों को उठा कर फैंकने की शक्ति है मुझ में।"

जगतू और मोहन उन दोनों की ओर केवल देख भर रहे थे।

उनका अस्तित्व केवल उनकी आंखों में ही शेष था ।

शामू ने रतन का गला इस ज़ोर से पकड़ा हुआ था कि उसे अपनी जगह से उठना पड़ गया । ज़रा हाथ-पांव हिलाने की उसने कोशिश की तो लगा किसी तालाब में तैर रहा है । फिर भी अभी तक उसकी चेतना लुप्त नहीं हुई थी । लड़खड़ाते लहज़े में बोला, "चाचा तू शराब पिला कर हाथा-पाई करता है ? मैंने तो तुम्हारे भले की कही । मुझे तो केवल शानो का ख्याल है ।"

शामू आपे से बाहर हो कर चीखा, "देख साले अगर दूसरी बार शानो का नाम लिया तो यहीं ज़िन्दा गाड़ दूंगा तुम्हें ?"

"चाचा मैं पचास बार शानो का नाम लूंगा, परन्तु तुम्हें उसकी बलि नहीं देने दूंगा । उसके जीवन की बलि देकर तुम दूल्हा बनना चाहते हो ?"

"तो तुम्हारा साहस यहां तक बढ़ गया हरामी ? अभी तुम्हें बताता हूँ मैं क्या बनना चाहता हूं ।" कह कर शामू ने एक हाथ से स्तम्भ का सहारा लेते हुए अपनी लंगड़ी टांग को इस ज़ोर से रतन पर मारा कि वह बल खाता हुआ दरवाज़े के पास जा गिरा । अब तक नशा चढ़ चुका था । शामू ने दरवाज़ा खोला और उसे एक ओर टांग मार कर गली के बाहर फैंक दिया ।

दरवाज़ा बन्द कर के वह पुनः वहीं आ कर बैठ गया । तुरन्त बोतल से कटोरे में शराब उंडेली और गटागट पी गया । जगतू और मोहन एक दूसरे पर लुढ़के हुए किसी और ही लोक में पहुंचे हुए थे ।

शानो ने जब शामू चाचा की आवेगपूर्ण बातें (मामा को कहते हुए) सुनीं तो परिस्थिति की विडम्बना से त्रस्त होकर वह

कितनी ही देर बिलख-बिलख कर रोती रही। ठीक ही तो है चाचा की बात। बचपन से उसी ने मुझे लाड-प्यार से पाला है। आखिर किस लिए पाला जाता है? मेरा रोम-रोम उसका ऋणी है। मैं तो आजीवन उऋण नहीं हो सकती। मन में जो लालसा लेकर उसने मुझे इतना बड़ा किया है, क्या 'मैं इतनी कृतघ्न हो जाऊंगी कि उसे मन में वही लालसा लिए हुए मर जाने दूं? नहीं, नहीं! मैं ऐसा नहीं कर सकती। चाचा ठीक कह रहा है, बिल्कुल ठीक कह रहा है।

यह सब सोचते हुए शानो के आंसू बहते रहे। बहुत देर निढाल हो वह खाट पर पड़ी रही। अंधेरा होने लगा था, तब वह अचानक उठ बैठी। निश्चय कर लिया कि वह अभी रतन के पास जाकर कह देगी कि वह मुझ से विवाह करने का विचार छोड़ दे। मुझे वहीं ब्याह करना है जहां शामू चाचा ने रिश्ता तय किया है। पति छोटा है तो क्या हुआ, ज्यति के समान दिनों-दिन बढ़ता जाएगा।

उसी समय वह लछमी के पास पहुँची। देखा वह रतन की प्रतीक्षा में बैठी है।

लछमी ने पूछा, "तुम्हें पता है रतन कहां है?"

"नहीं तो" शानो ने उत्तर दिया। फिर कहा, "शायद वह पंच मामा के पास गया था।"

"मैं शाम से बैठी हूँ कि आकर कुछ खाएगा। दोपहर से पहले ही खाना खाकर गया था।"

"मैं इधर से गुज़र रही थी सोचा चाची से मिलती जाती हूँ।"

लछमी ने ध्यान से शानो की ओर देखा। उसकी प्रौढ़ दृष्टि से शानो की उदासी न छिप सकी। साफ लगता था कि उसका चेहरा

आंसुओं से घुला है। लछमी ने उसे अपने पास बिठा कर उसके सिर पर हाथ फैरते हुए कहा, "तू रोई हुई दिखती है, क्या शामू ने मारा है?"

"नहीं" कहते हुए शानो की आंखें भीग गईं।

"रोने से कुछ नहीं होगा" लछमी ने उसे प्यार करते हुए कहा, 'मैं तुम्हारे मन का दर्द जानती हूं। अब तो रतन आया है। वह जरूर कुछ करेगा। मैं जानती हूं तुम बहुत चाहते हो एक-दूसरे को।"

लछमी की बात सुन शानो अपने में सिमट गई। फिर साहस बटोर कर बोली, "कुछ भी करने से कुछ नहीं होगा चाची? क्या चाचा कभी ऐसी बात मानेगा।"

"पंच और रतन जैसे भी होगा उसे मना लें गे। तू क्यों चिंता करती है। मैं रतन को जानती हूँ। वह तुम्हारे साथ इतना बड़ा अन्याय नहीं होने देगा।"

लछमी ने अभी बात पूरी ही की कि अकस्मात एक धड़ाके के साथ दरवाजा खुला और रतन गिरते गिरते बचा। पंच मामा ने उसे थाम रखा था।

लछमी और शानो ने जैसे चीखते-चीखते अपनी आवाज़ों को दबा लिया। भयातुर हो कर दोनों खड़ी हो गईं। फिर लछमी दौड़ कर आगे बढ़ी, "यह क्या हो गया है मेरे रतन को?"

"कुछ नहीं हुआ मां घबराओ मत।" रतन ने नशे में कहा।

रतन को सम्भाले पंच मामा ने रतन से कहा, "शामू ने इसे शराब पिला दी है। इसे खाट पर लिटा दो, सवेरे तक ठीक हो जायगा।"

लछमी ने रतन को सम्भाला।

"शामू ने तो गांव का सत्यानाश कर दिया है।" कहता हुआ मामा बाहर निकल गया।

लछमी का हृदय जैसे किसी ने दो-टूक कर दिया था। मरी हुई सी वह रतन को सम्भाले खाट की ओर बढ़ी। शानो पत्थर बनी एक कोने में जा खड़ी हुई थी। रतन नशे में डूबा हुआ कहे जा रहा था, "शामू चाचा से मैंने कहा तुम अच्छे आदमी नहीं हो, तुम अपने स्वार्थ के लिए शानो की बलि देना चाहते हो। उसने मुझे मारा। पहले शराब पिलाई फिर मारा। माँ उसकी लंगड़ी टांग में बड़ा बल है। उसी टांग से मुझे ऐसा मारा कि मैं दूर जा गिरा। बड़ा लम्पट है शामू चाचा। उस की बातों में कभी न आना मां। मुझ से तो पूछो वह क्या है। काला साँप है वह। एक रोज़ मैं जब उसका सिर कुचल दूंगा तो वह तड़प-तड़प कर मर जाएगा।" कहता हुआ रतन खाट पर बेसुध पड़ गया।

लछमी मुंह में पलड़ा ठूंस ठूंस कर रोने लगी।

शानो को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या करे। लछमी को सांत्वना दे या अपने मन की पीड़ा से घबराई हुई वहां से भाग ज़ाए।

———

सवेरे जब रतन की आंखें खुलीं तो देखा माँ बावड़ी से नहा कर पानी का बड़ा घड़ा सिर पर टिकाए आ रही है। एकाएक उसे रात की सारी बातें याद आ गईं। हृदय असह्य ग्लानि से भर गया। वह फिर सो जाने का उपक्रम करने लगा। अंग-अंग में एक पीड़ा व्याप्त थी। सिर दर्द से फटा जा रहा था। अब वह मां को कौनसा मुंह दिखाए। क्या करने चला था और क्या हो गया? मां को हमेशा उसने दुःख ही दिया है। यह सब सोचते-सोचते रतन को लगा कि उसका अस्तित्व एक फोड़ा बन गया है।

लछमी के चौका-बरतन करने की आवाजें आ रही थीं। आखिर वह कब तक इसी प्रकार पड़ा रहता। धीरे से उठा। लछमी ने उस की ओर जान-बूझ कर नहीं देखा। रतन उसके पास आ खड़ा हुआ तब भी

नहीं देखा, तो एकाएक रतन ने उसके पांव पकड़ लिए, "मुझे माफ कर दो मां। अब की बार माफ कर दो। मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिए हैं। अब ऐसा नहीं करूंगा।"

लछमी ने रोते हुए उसके सिर पर हाथ फेरा, "बेटा, जहाँ मैंने इतने दुःख सहे हैं वहां एक यह भी सही। मैं तो केवल यह सोचती हूँ कि तू शराब में डूब गया तो जो मैं चाहती हूँ वह कैसे होगा ?"

"तुम क्या चाहती हो मां ? मुझे बताओ तो।" रतन ने जल्दी से कहा।

"अब बताने से कोई लाभ नहीं। रात मैंने जो तुम्हारा रूप देखा, सोचती हूँ तुम्हारे बारे में गलत सोचती रही सब।"

"नहीं मां, कल मोहन और जगतू ने मुझे फंसा दिया। अब ऐसा नहीं होगा। तुम मुझे बताओ तो, तुम ने क्या सोचा है ?"

लछमी ने बड़े गम्भीर स्वरों में कहा, "मैंने सोचा था तू पंच मामा को साथ लेकर सारे गांव वालों को इस बात पर राजी कर लेगा कि शामू शानो की बलि दे कर अपना ब्याह न करने पाए।"

"मैंने भी तो यही सोचा है मां।" रतन ने उत्साहित हो कर कहा।

"परन्तु तुम ऐसा नहीं कर सकोगे।" लछमी ने रुखाई और निराशा से कहा।"

"क्यों—मैं ऐसा क्यों नहीं कर सकूंगा मां ?"

"तुम में इतना बल नहीं।"

"रतन ने लछमी को कन्धों से पकड़ कर कहा, "मां तुम मुझे यह अभिशाप क्यों देती हो ? यह अभिशाप देकर मुझ से मेरा सारा साहस क्यों छीन रही हो ?"

लछमी ने पूर्ववत दृढ़ता से कहा, "तुम ढिलमिल विश्वासों के व्यक्ति हो।"

"नहीं मां मैं तो तुम्हारा ही बेटा हूँ। मैंने तुम्हारा वास्तविक रूप तो आज ही देखा।"

"अगर तुम मेरे बेटे होते तो ये सब बातें करने के बजाए सारे गांव वालों के सामने शानो का हाथ अपने हाथ में ले लेते।"

"मां" कह कर रतन लछमी के गले से लग गया। लछमी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "शानो बड़ी दु:खी है रतन। तुम उसकी ज़िन्दगी का व्यापार न होने दो। उसके यौवन को आग लगने से पहले ही बचा लो।" कहते कहते लछमी के आंसू निकल आए।

रतन ने सिर उठाते हुए कहा, "मुझे तुम्हारा आशीर्वाद मिल गया है मां। अपने रतन की ओर से अब तुम कुछ भी चिन्ता न करो। अब वही होगा जो तुम चाहती हो।" कह कर रतन जल्दी जल्दी पंच मामा के पास जाने के लिए तैयार होने लगा। लछमी के मन में अब भी एक शंका थी। न जाने क्यों।

अपने से बेखबर शानो दूर ऊपर सर्प मन्दिर से भी आगे निकल गई। आज उसने बकरियों को भी अपने साथ नहीं लाया था। रतन ने तो उस से कहा था कि वह मन्दिर के आस-पास ही रहे। क्या वह रतन से नहीं मिलना चाहती? वह लक्ष्य हीन कहां चली जा रही है? कुछ भी पता नहीं था, बस वह देवदार वृक्षों के इस सघन वन में बढ़ती चली जा रही थी, एक धूमिल पगडण्डी पर।

अचानक उसके कानों में वृक्ष काटने की आवाज़ सुनाई दी। कहीं पास ही कुछ मज़दूर किसी ठेकेदार का बड़ा वृक्ष काट रहे थे। कुछ पल के लिए शानो वहां रुक गई। अनायास ही उसके कान उस दिशा को चीहन्ते रहे जिधर से वृक्ष के तने पर भारी कुल्हाड़ों के पड़ने की आवाज़ें आ रही थीं। दिशा चीहन्ने के उपरांत उसके पांव स्वत: उसी ओर बढ़ने

लगे। काफी आगे बढ़ गई वह। लगता था वृक्ष काटने का स्थान वहीं है, परन्तु घनी झाड़ियों में उसे स्पष्ट नहीं दिखा रहा था कि कौनसा वृक्ष गिराया जा रहा है। कोई बहुत बड़ा वृक्ष है—यह तो निश्चित था।

सहसा कुल्हाड़ों की आवाजें बन्द हो गईं।

"शानो" यह रतन की आवाज़ थी। वह दूर से उसकी ओर भागा आ रहा था। परन्तु शानो ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। उस स्थिति में उसे आवाज़ सुनाई ही नहीं दी।

तभी एक मज़दूर ने पुकारा, "रस्सा खींचो।"

दूसरा मज़दूर चीखा, "बचो ! ! ऽऽऽ—"

शानो ने ऊपर देखा, बड़ा वृक्ष उसकी ओर झूल रहा था।

"शानो" रतन भागता हुआ आ रहा था। फिर भी शानो ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। वह सतत अपने ऊपर गिरते हुए वृक्ष को देख रही थी।

वृक्ष गिरा, परन्तु उस से पहले ही रतन ने उसे एक ओर खींच लिया।

शानो अचेत हो गई थी। रतन उसे उठा कर निकट ही एक स्रोत पर ले गया। वहाँ पर ठण्डे पानी के छींटे मारे। उसे सचेत किया। तब भी कितनी ही देर शानो की देह कांपती रही।

"यह तुम्हें क्या हो गया था शानो ?" रतन ने उसका सिर अपनी जंघाओं पर रखते हुए कहा, "क्या तुम्हें गिरता हुआ वृक्ष दिखाई नहीं दिया था ?"

शानो उठ कर बैठ गई, कहा, "दिखाई दे रहा था, इसी लिए तो पीछे नहीं हटी।"

"ऐसी क्या बात हुई कि प्राणों का मोह टूट गया ?"

"अब और क्या होना शेष रह गया है ?"

"बहुत कुछ शानो। मैंने बहुत कुछ करने को सोच लिया है। आज ही पंच मामा से मिल कर बहुत सी बातें तय करनी हैं। वही सब तुम्हें बताने के लिए तो ढूंढता हुआ आज यहां तक आ गया। कितनी ही आवाज़ें देता हुआ पीछे भाग रहा था, परन्तु तुम ने कोई आवाज़ ही नहीं सुनी।"

"मैं तो यहां किसी टूटते वृक्ष के नीचे आने के लिए आई थी। तुम ने मुझे क्यों बचा लिया ?"

रतन ने उसके हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, मैंने "तुम्हें बचाने की सौगन्ध खाई है शानो।"

"परन्तु मैं नहीं चाहती कि तुम मेरे लिए कुछ करो।"

"क्यों ?" कहते हुए रतन ने उसके हाथ खींचते हुए उसे अपने समीप करना चाहा।

शानो ने मुंह दूसरी ओर करते हुए कहा, "बस—मैं नहीं चाहती।"

रतन ने उसे और भी खींच कर उसका मुख अपनी ओर कर लिया। शानो की आंखों में आंसू थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह शानो को क्या हो गया है। क्यों वह कुछ ही दिनों में इतनी बदल गई है। विषय बदलने के उसने लिये कहा, "देखो शानो कितनी सुन्दर जगह है यह। मनुष्य बदल जाते हैं परन्तु कुदरत का सौन्दर्य वैसे का वैसा ही रहता है। यह मखमली दूब भरे मैदान, यह ऊंचे-ऊंचे वृक्ष, वृक्षों में से गुजरती हुई सीटियां मारती हवा। यह स्त्रोत का कलकल करता पानी—तुम्हें याद है इस स्त्रोत का पानी हमअ पनी अपनी ओक में एक दूसरे को पिलाया करते थे। आओ आज भी—" परन्तु सहसा रतन ने देखा जैसे शानो तो उसे सुन ही नहीं रही। उसने निराशा से कहा, "तुम किन सोचों में डूबी हुई हो ?"

शानो ने पूर्ववत मंथरता से कहा, "रतन।"

"अँ"

"मैं नहीं चाहती कि तुम मेरे लिये कुछ करो।" रतन चुप रहा तो शानो ने फिर कहा, "मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध ही क्या है?"

रतन के लिए यह आघात सर्वथा अप्रत्याशित था। अकुला उठा। क्या शानो अब तक होश में नहीं आई? कैसी बातें कर रही है यह?

"यह तुम्हें क्या हो गया है शानो?" रतन की आवाज़ में दबी दबी रुलाई थी।

"मैं ठीक कह रही हूं। मेरा तेरा सम्बन्ध है क्या?"

रतन ने फूट कर कहा, "यह तुम इस लिए कह रही हो कि मैंने उस दिन शराब पी?"

"अरे तुम मर्द हो कर रोने लगे? वह तो ज़रा सी बात थी। गांव में बहुतेरे लोग पीते हैं। तुमने पी ली तो क्या हुआ। मै तो केवल यह नहीं चाहती कि मुझे ले कर गांव में कोई झगड़ा बढ़े।"

रतन आवेश में आ गया। आंसू पोंछता हुआ बोला, "मैं तुम से पूछ कर कुछ नहीं कर रहा, और न तुम्हारे कहने से कुछ करने से रुक जाऊंगा। शामू चाचा ने मन में जो निश्चय कर रखा है, वह इस वृक्ष के समान टूट कर नीचे गिर पड़ेगा।"

"परन्तु जो वृक्ष स्वयं गिर रहा हो उसे भला कौन थाम सकता है।"

"शानो तुम अपने आपको टूटता हुआ वृक्ष मत समझो। टूटते हुए वृक्ष तो शामू चाचा जैसे लोग हैं। हम तो फूटते हुए अंकुर हैं, नई पौध हैं। हमें फूलना-फलना आगे बढ़ना है।"

"परन्तु नई पौध इतनी कृतघ्न भी क्योंकर हो सकती है, जैसा तुम से चाहते हो। शामू चाचा कैसा भी हो – कुछ भी करे मुझे कोई

भी अधिकार नहीं कि मैं उसके सामने बोल भी सकूं। आखिर मुझे उसी ने तो पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है। अपना लाड-प्यार भी दिया है। यदि अपने स्वार्थ की वेदी पर वह मेरा बलिदान देना चाहता है तो इसका उसे पूरा हक है।"

रतन को कुछ नहीं सूझा कि वह क्या कहे। छटपटाहट भरी दृष्टि से उसने शानो की ओर देखा। शानो की आभाहीन आँखों में सफेदी सी झलक रही थी। रतन विमूढ़ सा उसकी ओर देखता रहा।

शानो ने फिर कहा, 'मेरा रोम-रोम इसका ऋणी है। वह जो चाहता है उसे करने दो। इस तरह मैं उसके उपकारों का बदला चुकाना चाहती हूं।" यह कहते हुए वह झट से उठ खड़ी हुई, और गांव की ओर जाती हुई पगडण्डी पर भागने-सी लगी।

रतन को जंगल में चारों ओर उसकी आवाज़ गूंजती हुई सुनाई देने लगी, "मैं बदला चुकाना चाहती हूं, मैं बदला चुकाना चाहती हूं।"

उसी दिन रतन ने लछमी से कहा, "मां शानो तो चाहती नहीं कि हम उसके चाचा को किसी बात से भी रोकें। कह रही थी मैं तो चाचा के उपकारों का बदला चुकाना चाहती हूँ।"

रतन के उदास और निराश मुख की ओर देख कर लछमी को लगा कि उसके हृदय ने शंकाओं का वह छोर थाह लिया है जो कहीं अदृश्य हो चुका था। उत्तर दिया, "लड़कियां विवश होती हैं रतन। संस्कारों के जाल से निकलना उनके लिये असम्भव होता है। अपनी सीमाओं में बंधी हुई शानो का कर्तव्य शायद यही है कि वह शामू के उपकारों का बदला चुकाए। अपनी दृष्टि में वह हीन नहीं होना चाहती। इस हीन भाव से उभरने के लिए उसे एक सहारा चाहिए।"

रतन ने अचम्भे से मां की ओर देखा। अभी जो कुछ उसने सुना

क्या उसकी मां ने ही कहा है ? इस गंवई पहाड़ी औरत ने, जो केवल दुःखों का बोझा ढोती-ढोती समय से पहले ही बूढ़ी हो चुकी है। कैसे मर्म की बात की है उसने।

रतन ने कहा, "मां तुमने सच ही कहा है। शानो को इस समय जिस आश्रय की अपेक्षा है वह निश्चय ही मैं नहीं हूँ। परन्तु जब तक तुम मेरे साथ हो मां मैं अपने कर्तव्य से डिगूंगा नहीं। जीते जी हारूंगा नहीं।"

लछमी ने मुस्करा कर सगर्व रतन की ओर देखा।

रतन का लुप्त हो चुका उत्साह पुनः लौट आया। अपने में एक नया आवेश पा वह घर से निकल गया।

पंच मामा उस समय रतन की ही प्रतीक्षा में था। रतन ने आते ही पूछा, "मामा क्या सोचा फिर इस बारे में ?"

मामा ने कहा, "सब सोच लिया है। परन्तु रतन यह बड़े जोखम का काम है। हालत यह है कि लोग उस बात को सुनना भी नहीं चाहते जिस बात को हम अमली रूप देना चाहते हैं। मैं तुम्हें बताता हूं कि मैंने क्या सोचा है। सारे गांव में चार बड़े-बड़े मुखिया हैं— नानकू ठक्कर, बेली राम शाह, परोहित तोता राम और भागू जमींदार। परन्तु इनमें से एक को भी अपने पक्ष में करना बालू में से तेल निकालना है। नानकू और भागू ने दो-दो तीन-तीन ब्याह किए है दोहरी के रूप में ही। तोता राम ने भी अभी-अभी पहली पत्नी की बेटी को दोहरी में दे कर एक और विवाह किया है। और बेली राम को तुम जानते हो, वह शामू का मित्र अधिक है, मेरे तो प्राणों का बैरी है। फिर भी सब को मैं सम्भालूंगा। जानता हूँ ये सभी मेरे दुश्मन हो जाएंगे, इनके सामने बात करनी भी आसान नहीं। फिर भी जो काम करना है, वह तो करना ही है। यदि हम गांव के युवकों जगतू, रामू, मोहन,

सुनीता आदि को अपने साथ कर लें तो बड़े मुखियों पर बड़ा दबाव पड़ सकता है। और यह काम तुम्हारा रहेगा। तुम इन सब लड़कों को अपने साथ कर लो तो समझो आधा काम हो गया।"

रतन ने कहा, "मोहन और जगतू तो मेरे साथ हैं ही। बाकी सब को भी समझाया जा सकता है। परन्तु मामा इन्हें समझाने के बाद क्या करना होगा ?"

"बाद में गांव की पंचायत बैठेगी, यानी गांव के सब मुखिया लोग तो समझो पंचायत ही हो गई। वहां यह निर्णय होगा कि आगे से कोई भी दोहरी का ब्याह नहीं कर सकता।"

"ये मुखिया लोग कभी मानेंगे इस बात को ?"

"मैं इसके लिये जान की बाज़ी लगा दूंगा। यदि सबने मेरी बात न मानी तो भी में तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि शामू अपना ब्याह न कर सकेगा।"

सहसा रतन को अनुभव हुआ कि वह कुछ हीन पड़ गया हैं। सोचने लगा शायद मामा ने उसे प्रलोभन दिया है। बोला, "मुझे गलत तो नहीं समझे मामा तुम। मैं केवल इसी लिए यह सब नहीं कर रहा कि शामू का ब्याह रुके गा तो शानो से मेरी शादी हो जाएगी।"

पंचमामा ने एक कहकहा लग कर स्थिति को सम्भाल लिया, "क्यों नादानों की सी बात करते हो रतन। जब मेरे मन में कोई ऐसा प्रलोभन नहीं तो में क्यों सोचू कि तुम किसी लाल्च से ऐसा कर रहे हो यदि हम अपने इस कार्य में सफल हो गए तो सोचो यहां कितनों का भला होगा। और अगर तुम्हारा ब्याह शानो से होता ही है तो हो भी क्यों न भला। आखिर हम ऐसा ही तो चाहते हैं।"

रतन मन ही मन मामा से प्रति नतमस्तक होकर वहां से चला आया।

उसी शाम वह जगतू के घर पहुंचा। मोहन भी वहीं था। अभी शानू के आने में काफी समय था।

बातों ही बातों में रतन ने पूछा, "जगतू तुम अभी तक अपना ब्याह क्यों नहीं कर पाए ?"

जगतू ने स्पष्टतया कहा, "रिश्ते नाते में कहीं दूर-दूर तक लड़की नहीं कि जिसे देकर मेरा ब्याह हो सके। इतना पैसा भी तो गाँठ में नहीं कि लड़की मिल जाए।"

मोहन बोला, "सुनो रतन मैंने जगतू से कई बार कहा है कि भागू जमींदार की छोटी पत्नी सोमा तुम पर मरती है, उसे लेकर शहर भाग जाओ, मगर हमारी बात कब सुनता है।"

मोहन की बात सुन कर रतन मुस्करा पड़ा।

जगतू ने झेंप कर कहा, "यह तो मजाक कर रहा है।"

मोहन ने फिर गम्भीर बनते हुए कहा, "रतन इसकी बात रहने दो। बाहर से यह जितना चुप-चाप रहता है, भीतर से उतना ही उस्ताद है। कल खुद ही मुझे बता रहा था कि तोताराम की नई पत्नी ने भी इससे आखें लड़ानी शुरू कर दी हैं। अरे इसी का क्या पूछते हो, यह तो फिर जवान है, खूबसूरत है, मैं शामू चाचा की बात बताता हूं; कोई दिन ऐसा नहीं होता जब यहां से पूरी-पूरी बोतल चढ़ा कर वह बेलीराम की सबसे बूढ़ी पत्नी से उनके पिछवाड़े न मिलता हो। एक दिन हमने उसका पीछा करके स्वयं अपनी आंखों से देखा था।"

रतन इन सब रहस्योद्घाटनों से घबरा गया। परन्तु इससे उसे वह बात करने की सुविधा हो गई, जिसके लिये वह यहां आया था। उसने कहा, "जगतू क्या कभी ऐसा नहीं हो सकता कि न यह दोहरी रहे न पैसों से औरतें ही खरीदी जा सकें।"

"ऐसा भी कभी हुआ है ?" मोहन ने कहा।

"ऐसा हो भी कैसे सकता है।" जगतू ने कहा।

"क्या तुम समझते हो दुनिया में भी सभी जगह इसी तरह होता है?"

"हमने सुना है शहर में लड़कियों के लिए लड़कों की खोज लगी रहती है।" जगतू बोला।

"और वहां लड़की के साथ और भी बहुत कुछ दिया जाता है।" मोहन ने जिज्ञासा प्रगट की।

रतन ने कहा, "हां वहां दहेज के लालच में लड़कों को फंसाया जाता है। परन्तु अब यह सौदागरी धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। बहुत से विवाह लड़के-लड़कियां अपनी मरजी से करने लगे हैं। यदि ऐसा यहां भी होने लगे तो कैसा रहे?"

जगतू ने कहा, "फिर तो जीवन ही बदल जाए अपना। कोई एक छैल-छबीली इस कुवाँरी कोठरी में भी आ जाएगी। अपनी बेसुरी बाँसुरी सुर में हो जाएगी।"

तब रतन ने उन दोनों को पंचमामा की पूरी योजना समझाई। यह बात समझ में न आने पर भी कि यह कैसे होगा, दोनों ने अगले ही दिन से रतन के साथ मिल कर काम करने का वचन दिया।

थोड़ी देर बाद शामू चाचा के वहां पहुँचने से पहले ही रतन वहां से उठ आया।

उधर पंचमामा भी धीरे-धीरे बात को बढ़ाने फैलाने लगा। उसका काम अधिक मुश्किल था। उसके समवयस्क गांव के बड़े-बूढ़े समझ गये कि पंच सिठिया गया है। परन्तु मामा ने बात करनी न छोड़ी! इससे इतना अवश्य हो गया कि गलियों, बावड़ियों और खेतों सभी जगहों पर इसी बात की चर्चा होने लगी।

शामू के लिए घर से बाहिर निकलना भी मुश्किल हो गया। स्त्रियां घूंघट निकाले उसके पास से गुजरतीं तो अपनी हंसी को मुंह पर हाथ रख कर रोकने का निष्फल प्रयत्न करतीं। बड़े-बूढ़े जो पहले दो-दो चार-चार दिनों के बाद ही कहीं आते-जाते शामू से मिलते थे, अब जान-बूझ कर रोज़ उसके पास आते उसे पास बुला कर कोई नई-ताज़ी खबर सुनाने का आग्रह करते। और तो और बच्चे भी राह चलते पूछने लगे, "चाचा व्याह का भोज कब खिला रहे हो?"

वह मन ही मन गालियां बकता। पंचमामा को तो खुले-आम पागल बूढ़ा कहता। घर में शानो पर बात-बे-बात पर हाथ उठा लेता। रतन और उसकी सात पीढ़ियों को पानी पी-पी कर कौसता।

एक दिन क्रोध से भरा (यह देख कर कि रतन घर में नहीं) लछमी से दो-टूक बातें करने जा पहुंचा। लछमी उस समय चक्की पीस रही थी। शामू ने विष भरे स्वर में कहा, "देखो लछमी मैं अब भी कहे देता हूं तुम्हारा बेटा जो कर रहा है वह ठीक नहीं।"

लछमी ने, घूंघट निकाले, जैसे उसकी बात ही नहीं सुनी। वह उसी धैर्य से चक्की में दाने डालती रही।

शामू ने ज़रा और आगे बढ़ कर कहा, "आज तक गांव में कभी ऐसी बात नहीं हुई थी। किसी ने कभी दोहरी के बारे में सोचा भी नहीं था। तुम अपनी ही ओर देखो, क्या तुम्हारे बापू ने भी तुम्हें बदले में देकर अपना विवाह नहीं किया था?"

शामू का यह कटाक्ष तीर-सा लछमी के कलेजे में बेध गया। चक्की को घुमाता हाथ अनायास रुक गया। एक मूठ में दाने भरे रह गये। क्षण भर इसी स्थिति में रह कर वह झटके से उठ खड़ी हुई। घूंघट उठाने को हाथ बढ़ा, परन्तु रुक गया। बड़ी मुश्किल से संयमित

रह कर धीरे से कंपकपाती आवाज़ में बोली, "अपनी बात अभी तक याद है, इसीलिये नहीं चाहती कि शानो के साथ भी ऐसा हो।"

शामू भी इस आघात से तड़फड़ा उठा। रतन का बापू तब काफी बूढ़ा था जब उसने लछमी को ब्याह कर लाया। वह रतन के जन्म से पहले ही मर गया था। शामू ने घायल होकर याचना-सी की, "मैं भी यह सब कुछ संतान के लिए कर रहा हूँ। मेरी भी एक यही लालसा है कि मेरा वंश चले। तुम चाहती हो मैं मर जाऊँ तो पीछे मुझे कोई पानी देने वाला भी न रहे।"

शामू की विनम्रता पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसका अंत:करण अभी तक उस व्यंग्य से तिलमिला रहा था जो शामू ने आते ही किया था। उसने कपकपाते, किन्तु पूर्ववत संयमित स्वर में कहा, "तुम कह जाओगे तो मैं तुम्हें पानी देती रहूँगी।"

सुनकर शामू तड़प उठा। हाथ-पाँव कांपने लगे। आंखों से अंगारे बरसने लगे। लंगड़ी टांग को छटपटाते हुए चीखकर बोला, "लछमी! तुम्हारा बेटा क्या वापिस आया है कि तुम्हारी ज़बान दो हाथ लम्बी हो गई है। शायद तुम यह भूल गईं कि मैं शामू हूँ।"

अब लछमी से अधिक सहन नहीं हो सका। बाएं हाथ के झटके से उसने अपना घूंघट उठा दिया। शब्दों के बजाए अंगारे बरसाते हुए बोली, "तुम्हें मुझसे अच्छी तरह और कौन जानता होगा शामू। इस गाँव में आई ही थी तो लंगड़ाते-लंगड़ाते मेरा पीछा करने लगे थे तुम। रतन का बापू मर गया तो मेरे पांव भी पकड़ लिये थे तुमने। मुझे क्या-क्या लोभ और लालच नहीं दिया था तुमने? लेकिन आखिर खुद ही हार गए थे इस लछमी से। तुम्हीं ने उस लछमी को भुला दिया है, और यह भी भूल गए हो कि रतन उसी लछमी की कोख से जन्मा है।"

शामू जैसे मात खा गया। लछमी का यह उग्र रूप उसने पहले कभी नहीं देखा था। समझ गया कि लछमी को धमकियां देना पानी पर रेखाएं डालने के बराबर है। पीछे हटते हुए अन्तिम बार अपनी बात को स्पष्ट करते हुए बोला, "देखो लछमी पंच के साथ मिल कर रतन जो कुछ कर रहा है, उसका नतीजा कुछ भी न निकलेगा। यहां कौन माई का लाल है जिसने दोहरी नहीं की, और जो करना नहीं करना चाहता। मेरे विरोध में कोई हो ही नहीं सकता। मैं केवल इस लिये कह रहा हूँ कि लोगों को व्यर्थ में बातें करने का अवसर मिल गया है। छोटे-बड़े मुझ पर हंसने और उंगलियां उठाने लगे हैं। फिर भी मैं ऐसी स्थिति में हार मानने वाला नहीं हूं। जानता हूं अन्त में मैं ही जीतूंगा। मान लो मैं नहीं जीता, तो भी किसी के हाथ कुछ लगने नहीं दूंगा। शानो का गला घोंट कर खुद पहाड़ पर से छलांग लगा दूंगा।"

यह कह शामू वहां से चला गया। लछमी उसकी अन्तिम बात सुन कर जैसे पत्थर बन गई। वह जानती थी शामू जो कुछ कह कर गया है, समय और स्थिति पर ऐसा कर भी सकता है।

पंच मामा सोचने लगा था न जाने किस मुहूर्त में अनहोनी को होनी बनाने का बीड़ा उठा लिया है। उनके पसीने छूटने लगे थे। गांव के सब बड़े बूढ़े उसका मजाक उड़ाने लगे।

वेली राम ने कहा, "पंच, समझ में नहीं आता कि आखिर तुम्हें यह सूझी कैसे ? लगता है बिल्कुल ही सिठिया गए हो। अरे भई साठ बरस के हम भी हो गए, ऐसा न कभी देखा न सुना।"

भागू जमींदार ने हुक्के का कश लगाते हुए कहा, "अरे पंच कहीं तू लछमी के चक्कर में तो नहीं पड़ गया ? शक तो हमें पहले से ही है

तुम पर। बेचारी जानती है रतन का ब्याह कभी नहीं होगा, तो सोचा पंच को ही बलि का बकरा बनाया जाए। परन्तु यह मत भूलो कि तुम्हारा बलिदान होने पर भी ऐसा कुछ यहां होने का नहीं।"

मामू की यह बात सुन कर पंच मामा का रक्त खौल उठा। पर वह समय झड़पने का नहीं था। भीतर ही भीतर तिलमिला कर रह गया वह।

तोता राम ने कहा, "पंच, हम ने तुम्हें इस लिए पँच नहीं बनाया कि गांव की आबरू को पानी करने लग जाओ। यह तो सरासर पागलपन है तुम्हारा।"

नाकू ठाकर बोला, "पंच के पास अपनी कोई दलील हो तो उस पर सोच-विचारा जा सकता है।"

तब पंच मामा ने सब से एक ही बात कही थी, "अगर तुम सब की एक पंचायत बैठे तो मैं अपनी दलीलें भी तुम्हारे सामने रख सकता हूं।"

"आस-पास के गाँव वाले हम सब को पागल कहेंगे अगर हम ने इस बात पर सोचने के लिए पंचायत बिठाई।" बेली राम ने जरा क्षुब्ध होकर कहा।

"हो सकता है बाद में गांव वाले हमारा ही अनुसरण करें।"

"तुम सचमुच पागल हो गए हो पंच।" सभी मुखिया एक साथ बोल उठे।

फिर सब ने अलग-अलग बैठ कर एक ही बात सोची कि गाँव में इस से पहले कभी ऐसी हलचल नहीं हुई, अगर पंच मामा के कहने पर पंचायत बैठ भी जाए तो एक-दो दिन के लिए दिललगी का सामान हो जाएगा। सो पंच मामा आखिर अपनी इस कोशिश में सफल हो गए कि पंचायत बैठे।

———

पंचायत बैठने के निर्णय से शामू बौखला उठा । परन्तु उस की बौखलाहट भी गांव के मुखिया जनों के लिए परिहास का साधन बन गई । फिर भी शामू ने भागू ज़मींदार और बेली राम ने पास जा कर अपनी मित्रता की दुहाई दी । बेली राम ने कहा, "शामू यह तो दिल-लगी हो रही है, तुम्हारे साथ नहीं, पंच मामा के साथ । जरा दो दिन खेल तमाशा हो लेने दो । वहीं यह भी निर्णय हो जाएगा कि पंच अब पंच नहीं रहा, उसका नाम बदल देना चाहिए ।"

सुन कर शामू बल्लियों उछल पड़ा ।

भागू ने पूछा, "तुम ने अपने ब्याह की तिथि कौनसी निश्चित की ?"

"तोता राम ने अगले महीने की आठ का लग्न बताया है ।"

"बस फिर अपने लिए फूल-सी निकाल कर रखना ।"

"अरे उसके लिए तुम आज ही चलो । दो-चार बोतलें तो रहती ही हैं ।"

उधर जगतू और मोहन ने शामू की संगत ही छोड़ दी थी । वे पूर्णतया रतन के पक्ष में थे । उन्होंने रामू, सोहन, बंसी आदि को भी अपने साथ कर लिया था । इन में से अधिक लड़कों के बड़े पुरखे तो वही थे जो पंच को उल्लू बनाने पर तुले हुए थे, परन्तु ये सब लड़के सद्भावना और जोश के साथ मामा और रतन का साथ दे रहे थे । फिर भी इनकी बैठकें गुप्त रूप से होती थीं, कभी बावड़ियों के ऊपर, कभी स्त्रोत के पास । इनका प्रोग्राम यह था कि जब पंचायत में मामा के हक में निर्णय हो तो वे सब ढोल बजाते हुए वहां नाचने लगेंगे ।

इस सारे कोलाहल में सब से अधिक उदास आत्मा शानो थी । उस ने अब घर से बाहर निकलना ही छोड़ दिया था । फिर भी सब बातों की भनक कानों में तो पड़ ही जाती थी । उसे लग रहा था जैसे उस की लाश को नंगा करके गलियों में घसीटा जा रहा है । उसे अब सब से

घृणा हो गई थी। रतन से मिले भी कई सप्ताह बीत गए थे। शामू चाचा मारता तो चुपचाप मार सह लेती थी।

रतन ने भी मन में सोच लिया था कि वह तभी शानो से मिलेगा जब पंचायत में उनके पक्ष में निर्णय होगा। वह लछमी से बाहर की प्रत्येक बात कह देता। लछमी भी उसे उत्साह देती। परन्तु कुछ दिनों न जाने क्यों वह भीतर ही भीतर व्यग्र हो उठी थी।

वे दिन यों बीत रहे थे जैसे ऊंचे पहाड़ों पर से बड़े बड़े पत्थर पूरे वेग से गड़गड़ाते-फिसलते गहरी घाटियों में गुम होते जाते हैं।

अन्ततः पंचायत बठने का दिन भी आ यया।

पंच मामा ने वही पाग बांध ली, जिसे वह सदा ऐसे ही अवसरों पर बांधता था। परन्तु आज पाग बांधते हुए उसके हाथ कांप रहे थे। हृदय की गति बढ़ गई थी। मन को जैसे अपनी सफलता का विश्वास नहीं था।

शामू पूर्ण रूप से विश्वस्त था। बेली राम, भागू जमींदार, नानकू ठक्कर आदि सब मुखियों ने उसे सत्य विश्वास दिलाया था कि पंच अब पंच नहीं रहेगा।

सभी लोगों ने जैसे आज काम-काज से छुट्टी मनाने का निश्चय कर लिया। तालाब के पास बड़ा खुली जगह में बड़ी बड़ी चटाइयां डाल दी गई। समयानुसार सभी मुखिया अपना-अपना हुक्का गुड़गुड़ाते पहुँच गए। पंच मामा भी उन्हीं के मध्य जा बैठा। गांव के दूसरे लोग भी आस-पास बैठ गए। इतने में शामू भी एक नया कनटोप पहन कर वहीं आ बैठा। उसे देख पंच मामा ने अपने हृदय में एक पीड़ा का अनुभव किया। शामू बचपन से उसका मित्र था। पचास वर्ष की पुरानी मित्रता को एक ओर छोड़ कर पंच मामा ने आज शामू पर ही आरोप लगाने के लिए यह पंचायत बिठाई थी। उसे इस बात का असीम दुःख था।

उधर रतन भी अपने उग्र मित्रों के साथ आ कर एक ओर बैठ गया। एक दो बड़े बड़े ढोल उन्होंने पास ही कहीं छिपा कर रख दिए थे। उन्हें पूरा विश्वास था कि जीत पंच मामा और रतन की ही होगी। शामू चाचा का मुंह काला होगा। तब वह ढोल पीट पीट कर नाचते हुए उसे घेर लेंगे, और अपने साथ उसे भी नचाएंगे।

छोटी जातियों के लोग भी आ कर एक ओर बैठ गए थे।

इतने में सब ने देखा कि दो विभिन्न दिशाओं से स्त्रियों की टोलियां पंचायत की कार्यवाही देखने-सुनने आ रही थीं। सभी स्त्रियों ने घूंघट निकाल रखे थे। एक टोली की अगुआ लछमी थी, एक की तारो—बेली राम शाह की सब से बड़ी पत्नी। वह शामू के पक्ष में थी। दोनों टोलियां एक ओर पास पास बैठ गईं। अब लगने लगा कि सभा भर गई है। प्रत्येक व्यक्ति उत्सुक था कि कार्यवाही प्रारम्भ हो।

परम्परानुसार पंच मामा ही उठे। सब चुप हो गए।

माथे से पसीना पौंछते हुए मामा ने कहा, "आज पंचायत में बड़े बड़े मुखियों के सामने जो मामला पेश हो रहा है, वह एक आदमी का अपना मामला भी है और सबका सांझा भी।"

इतना कह कर मामा ने शामू की ओर देखा जो बड़े धैर्य के साथ उसे सुन रहा था।

मामा ने खंगारते हुए कहा, "हमारे पहाड़ी गांव में दोहरी की रीति कब से चल रही है— किसी को पता नहीं। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, दोहरी की रीति ही चलती देखता आ रहा हूं। परन्तु क्या एक हो रही बात को बदला नहीं जा सकता? जब कि इस बात में अनेक बुराइयां पैदा हो चुकी हों। शामू मेरा मित्र है, परन्तु एक बुरी बात के लिए मैं अपनी मित्रता की आड़ नहीं लेना चाहता। वह शानो को बदले में देकर अपना जो ब्याह कर रहा है मैं उसका बड़ा विरोध करता हूँ, और

चाहता हूँ गांव में लड़की देकर लड़की लेने की रीति को बिल्कुल ही बंद कर दिया जाए, ताकि आगे कोई भी शामू सा कर्म न कर सके।"

बात करके मामा बैठा भी नहीं कि अपनी एक टांग पर झुलता हुआ शामू खड़ा हो गया। गरजते हुए बोला, "मेरे मुखिया भाइयो आप सब पंच महाशय की बात सुन कर अपने मन में जरूर हंस रहे होंगे। यह दोहरी को बन्द करने की बात यों कर रहा है जैसे खेतों को सींचने वाली पानी की छोटी सी नाली को बंद करने की बात कर रहा है और वह भी उस समय जब खुद तो सारी उमर अपने खेतों को सींच लिया और हमारी बारी आई तो नाली ही बन्द करने की ठान ली।"

वहां बैठे सभी लोग शामू की बात सुन कर हंस पड़े। मुखिया लोग अपने अपने हुक्के का कश लगाना भूल कर लोट-पोट हो गए। स्त्रियां भी घूंघटों में खिलखिला पड़ीं।

इस कोलाहल में पुरोहित तोता राम ने खड़े होते हुए शामू को बैठने का संकेत किया, और अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा, "पंच महाशय के अनुनय-विनय पर हम यहां इकट्ठे हुए हैं, परन्तु इस लिए नहीं कि किसी अनहोनी को होनी बनाया जाए, हम तो इस लिए यहां आए हैं कि पल दो पल एक साथ बैठ लें। शास्त्रों में मिलकर बैठने का बहुत महत्व दर्शाया गया है, परन्तु जो कुछ पंच महाशय ने सुझाव दिया हमें उस पर सोचना भी नहीं चाहिए। क्या पंच महाशय हमें बता सकते हैं यदि दोहरी से विवाह न किया जाए तो फिर कैसे किया जाए।"

पंच महाशय ने तुरन्त खड़े हो कर उत्तर दिया, "जहां लड़के के योग्य लड़की दिखे, या लड़की के योग्य लड़ दिखे वहीं ब्याह कर दिया जाए।"

"परन्तु लड़की वाले अपनी लड़की क्यों दें ?" बेली राम भी वाद-विवाद के मैदान में कूदा।

"इस लिये कि वह जवान हो गई है।" मामा ने तटस्थ भाव से कहा।

"यदि किसी को यूं ही मुफ्त में देनी है तो फिर पाल-पोस कर इतना बड़ा करने से क्या लाभ है ?" नानकू ठक्कर ने दार्शनिकों की भान्ति प्रश्न किया।

पंच मामा ने उत्तर दिया, "सन्तान की परवरिश करना आदमी का कर्तव्य है, यह कर्तव्य सभी को पूरा करना पड़ता है। आखिर लड़कों को भी तो पाला जाता है।"

पुरोहित ने कहा, "लड़के बड़े हो कर जायदाद के मालिक बनते हैं, बूढ़े माता-पिता की सेवा करते हैं। लड़कियां तो ससुराल वालों की हो जाती हैं, उनके काम आती हैं। फिर उनका मूल्य क्यों न लिया जाये और यदि किसी के पास मूल्य नहीं तो फिर लड़कों के बदले में लड़की ले। सीधी सी बात है।"

सारी सभा पुरोहित तोता राम की दलीलों से दंग रह गई। विशेषकर स्त्रियां मन्त्र-मुगध हो गईं। अन्य मुखियों को उसकी बुद्धिमत्ता से डाह होने लगा। छोटी जातियों के लोग धन्य धन्य पुकार उठे। आखिर यहाँ केवल पुरोहित ही शास्त्रों का ज्ञाता है। भला पंच मामा उसके आगे क्या बोलेगा ?"

और सचमुच पंच मामा लाजवाब हो गया। वह सोचने लग पड़ा आखिर वह क्या कहने जा रहा है ? किन लोगों के सामने ऐसी बातें कह रहा है ? उससे सचमुच कितनी बड़ी भूल हो गई पंचायत बुला कर।

बेली राम की बड़ी पत्नी दाएं हाथ की मूठ बना कर जोर जोर से अपने बाएं हाथ की हथेली पर मारती हुई लछमी का मुंह चिढ़ा रही

थी। लछमी सोच रही थी कहां आ कर उसने अपने मुंह पर कालिख लगवाई। शायद पुत्र-विवाह के प्रलोभन ने ही उसे यहां तक भटकाया है। सारे गांव से वैर बढ़ा लिया।

केवल रतन ही उस समय हार मानने को तैयार न हुआ। बड़े वेग से उठ कर वह चीखने-सा लगा, "तुम लोग अपनी सन्तानों का मोल करते हो। यह अन्याय है, अत्याचार है।"

भागू ज़मींदार ने उसी दम उठ कर कहा, "हमारे साथ तो ऐसा कोई अन्याय नहीं हुआ, अगर तुम्हारे साथ ऐसी कोई बात हो रही हो तो हमने उसका ठेका तो नहीं ले रखा।" भागू के कहने का अभिप्राय केवल यह था कि मैं भी तोता राम से अकल में कम नहीं हूँ।

रतन ने चिल्ला कर कहा, "यहां केवल मेरी बात नहीं हो रही, जितने लोगों की जिन्दगियों का सौदा तम लोग करते हो कभी उन से भी पूछ देखा करो।"

"जरा हमें बताओ तो वे कौन-कौन लोग हैं?"

रतन ने जगतू की ओर देखा कि वह उठ कर कुछ बोले, परन्तु जगतू ने गर्दन नीचे झुका ली। वह तो भागू ज़मींदार की असामी है। वह भला उसी के सामने कैसे बोल सकता है। तब रतन ने मोहन की ओर देखा। मोहन ने मुंह दूसरी ओर कर लिया, वह अपने बाप तोता राम से बड़ा डरता था। बन्सी ने भी उसे संकेत द्वारा समझा दिया कि अगर उस ने उठ कर कुछ कहा तो उसका बाप नानकू ठक्कर उसे जान से मार डालेगा। ऐसी ही विवशता सब के साथ थी।

अपने साथियों का यह हाल देख रतन को चक्कर आ गया।

तभी मामा ने खड़े हो कर अपने सहज गम्भीर लहजे में कहना शुरू किया, "भाइयो दोष मेरा है कि मैंने आप सब लोगों के सामने अपना मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव रखा। मैं ठहरा बूढ़ा—मेरे साथी ढलती हुई

उमर के लोग और कुछ वर्षों के बाद नहीं रहेंगे, मैं भी नहीं रहूँगा। तब इस गांव के मुखिया वही लोग होंगे जो आज इस सभा में कुछ बोल नहीं सकते। जब वह बोलने से विवश नहीं होंगे, और कुछ करने में समर्थ होंगे, तब वह वही बात करेंगे, जिसे आज तुम सब लोग मेरी मूर्खता समझते हो।"

मामा की बात का सत्य चाहे सब लोगों ने नहीं समझा, परन्तु उनके कहने के ढंग से सभी प्रभावित हो रहे थे। रतन लड़खड़ा कर बैठ चुका था। लछमी की आंखों में ग्लानि के आंसू थे। केवल शामू ने अपनी छाती फुला ली थी। उसनी मैदान मार लिया था।

पंच मामा ने अपने बात जारी रखी, "मैंने आप लोगों को जो कष्ट दिया उसके लिए माफी मांगता हूँ। परन्तु इस सारी बात के पीछे मेरी धारणा यह थी कि मैं अपने बचपन के मित्र शामू को वह बात करने से रोकूं जिसे मैं अब भी अन्याय ही समझता हूं। इस अन्याय-पथ पर मैं अब भी शामू को नहीं जाने दूंगा, चाहे इसके लिए मुझे अपना दिया वह वचन ही क्यों न तोड़ना पड़े जो मैंने शामू को दिया था। मैं अब इस बात को छिपा कर नहीं रखना चाहता कि शानो पर शामू का कोई भी अधिकार नहीं।"

'अरे पंच चुप रहो" शामू ने खड़े हो कर चिल्लाया।

सब ने अचम्भे से शामू की ओर देखा। वह यों थर-थर कांप रहा था जैसे उसमें किसी देवता ने अवतार लिया हो।

परन्तु मामा ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। माथे से पसीना पोंछते हुए वह कहता गया, "मैंने शामू को वचन दिया था कि यह रहस्य मैं कभी भी नहीं खोलूंगा। इस बात को छिपा कर मैंने बहुत बड़ा पाप किया था परन्तु सोचा था शानो की दोहरी न होने दे कर

इस पाप का प्रायश्चित हो जाएगा। इसीलिए मेरे दिमाग में यह धुन समाई जो वास्तव में आने वाली पीढ़ी का कर्तव्य है।"

"मैं आपको पूरी घटना सुनाता हूं। आज से बारह तेरह वर्ष पहले मैं और शामू ऊधमपुर में बिसाखी का मेला देखने गये थे। वहाँ———"

"अरे पंच चुप रहो" शामू उस की बात काट कर फिर चीखा।

"मुझे माफ करो शामू मैं इस समय चुप नहीं रह सकता। हां तो मैं कह रहा था———"

"मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा।" कहते हुए शामू क्रोध में मामा पर झपटा। सारी सभा में खलबली मच गई। कई लोगों ने आगे बढ़ कर शामू को थाम लिया।

पंच मामा ने फिर भी शामू की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह जोर से कहने लगा, "बैठ जाओ, मेरी पूरी बात सुनो।"

रतन और उसके साथियों ने मिल कर सब लोगों को बिठा दिया। लोग तो स्वयं मामा की बात को पूरा सुनना चाहते थे। कोई रहस्य तो अवश्य था जिसके लिये शामू यों मामा पर झपट पड़ा। कैसी विचित्र बात है कि शानो पर शामू का कोई अधिकार ही नहीं?

जब लोग दुबारा अपनी अपनी जगह पर बैठ गए तो किसी ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि शामू वहां से बिल्कुल ही खिसक चुका है।

पंच मामा उसी तटस्थ भाव से कहते गए, "उस मेले में हम पहली ही बार गए थे। सारा दिन वहां घूमते-फिरते रहे। शाम को अचानक ही एक जगह एक बड़ी भीड़ में हमें दो वर्ष की एक लड़की रोती हुई मिली जो अपने माता-पिता से बिछुड़ जाने के कारण रो रही थी। शामू ने झट उसे उठा लिया, और मेले से बाहर एक एक एकान्त स्थान में ले आया। मैंने कहा, "चलो इसके मां-बाप को ढूंढते हैं।" शामू ने

कहा, "अभी चलते हैं, अभी चलते हैं"—और यही कहते हमें वहां रात हो गई। लड़की बेचारी रोते रोते थक कर सो गई। तब शामू ने मुझे कहा, "अगर हम इस लड़की को अपने घर ले चलें तो मेरा यह चाव पूरा हो जाएगा कि मेरा भी विवाह हो, बच्चा हो।" मैं शामू का आशय समझ गया। न जाने क्यों उस समय में भी उस पाप का भागीदार बन गया। गाँव में आ कर शामू ने सभी से यह कहा कि यह लड़की उस के किसी रिश्तेदार की है, जो उसे उस मेले में मिली था। लड़की का नाम शानो रखा गया।

बाद में ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए इस पाप का बोझ मुझ पर बढ़ता गया। तब मैंने निश्चय कर लिया कि शामू को इस लड़की के बदले में ब्याह नहीं करने दूंगा। इसमे लड़की का जीवन बर्बाद हो जायगा। एक पाप जो पहले किया, साथ ही दूसरा नहीं करूंगा। शामू को बहुत समझाया पर वह नहीं माना। तब मैंने सोचा क्यों न इस दोहरी की रीति के ही विरुद्ध आवाज़ उठाई जाए। रतन को मैंने अपने साथ लिया, परन्तु आप सब लोगों ने मुझे पागल समझा। तब विवश हो कर मुझे यह सब कुछ बताना पड़ा। शामू को दिया हुआ वचन मैंने तोड़ डाला है। शाम मेरे मित्र मुझे माफ करना——"

मामा ने सजल नेत्रों से उधर देखा, परन्तु अब वहां शामू नहीं बैठा था। अकस्मात ही सब लोग चौंक पड़े। —"शामू कहां है—शामू कहां है?"

लछमी को बिजली के झटके सा यह विचार आया कि शामू घर चला गया होगा। उसे सहसा शामू के वे शब्द याद आ गए —"तो भी किसी के हाथ कुछ न लगने दूंगा। शानो का गला घोंट कर खुद पहाड़ पर से छलाँग लगा दूंगा।"

लछमी शामू के घर की ओर भागी। उसने रतन को पीछे-पीछे आने को कहा। रतन के पीछे-पीछे पंच मामा भी भागने लगा और पंच मामा को भागते देख अनेक लोग पीछे हो लिए।

"हाय ! हाय !" करता हुआ शामू जब भीड़ में से भागा तो अपनी भूल पर पछता रहा था कि उसने पंच मामा का विश्वास ही क्यों किया। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि पंच भी अपने वचन को तोड़ सकता है—गांव वालों को वह रहस्य बता सकता है जिस से सारा पर्दा फाश हो जाए।

वह घर की ओर भागा जा रहा था, और चलचित्र के समान गतिमान अपने विचारों को किसी एक बिन्दू पर थाह कर कोई एक निश्चय करना चाहता था। यह असम्भव था कि अब वह इस गांव में रह सकता। लोग क्या कहेंगे कि अपने मन की वासना के लिए एक मासूम लड़की को उठा लाया ? बड़े-छोटे सभी थूकेंगे उस पर, घृणा से बात नहीं करेंगे। तब क्या ऐसी स्थिति में यहां रहना हो सकेगा ? नहीं, अब वह इस गांव में नहीं रह सकेगा। भाग जाएगा यहाँ से। कहां ? बहुत दूर यहां से। परन्तु क्या शानो को यहीं छोड़ जाए ? नहीं, शानो को यहाँ छोड़ कर तो वह हार गया। फिर तो गांव वाले ही जीत गए। वह गांव वालों को कभी जीतने नहीं देगा। शानो को अपने साथ यहां से ले जाएगा। उसके माता-पिता को ढूंढ उनके हवाले कर देगा।

यहाँ तक सोचते-सोचते वह अपनी कोठरी के भीतर पहुँचा।

"शानो" उसने पुकारा।

परन्तु दूसरे ही क्षण अपने पांव में अचेत पड़ी हुई शानो को देख कर वह ठिठक गया। झुक कर उसे हिलाया, वह अचेत रही। तब शानो के पास ही पड़ा हुआ एक कटोरा देखा। चौंक कर उठाया। सूंघा—

अरे ! शानो ने विष पी लिया। "आहा ! हा ! ऽ ऽ" शाम पागलों की भान्ति कहकहे लगाता उठ खड़ा हुआ।

"तू चली गई शानो, तूने मेरी लाज रख ली। अब गांव वाले यहां चाहे तेरा ब्याह कर दें।" आ हा हा ! ऽ ऽ ! जाओ —जाओ शानो मैंने जो तुम्हारे साथ अन्याय किया अब मैं उसका प्रायश्चित करूंगा— आहा ! हा ! ऽ ऽ—" कहकहे लगाता हुआ शामू सर्प-मन्दिर की ओर निकल गया।

क्षण भर बाद ही भागती हुई लछमी वहां पहुंच गई। शानो को अचेत पड़ी देख पछाड़ खा कर गिर पड़ी। तभी रतन आ गया। उसने लछमी को सम्भाला और एक ओर खाट पर लिटा दिया। फिर वह शानो पर झुका। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि शानो सचमुच जीवित नहीं। उसके अपने हृदय की गति जैसे रुकने वाली थी। कांपते हुए उस ने शानो के हाथ अपने हाथों में ले लिए। उसी समय मामा भी वहां पहुँच गया। पीछे-पीछे कई अन्य लोग भी आ गए।

कटोरे में विष घुला देख उसी समय उपचार होने लगे। तब तक लछमी भी होश में आ गई। शानो को उल्टी की दवाई दे कर विष निकाला गया। पुरोहित ने नाड़ी देख कर कहा, "बच जाएगी।"

काफी देर बाद शानो ने आंखें खोलीं। लछमी को देखते ही वह उससे लिपट गई। सुबकते हुए बोली, "चाची मेरी इतनी बदनामी हो गई है गांव में, मैं अब जीना नहीं चाहती। इसी लिए तो मैंने स्वयं विष पी लिया था। मुझे क्यों बचा लिया तुम लोगों ने। क्यों बचा लिया ?"

शाम तक पता चला शामू पहाड़ पर से कूद गया।

मामा को बहुत दुःख हुआ। वह बच्चों के समान सिसक-सिसक कर रोने लगे।

बहुत दिनों बाद, एक दिन पंच मामा लछमी के घर पहुंचा। लछमी धान कूट रही थी, घूंघट निकाल कर मामा के पास खड़ी हो गई।

मामा ने कहा, "लछमी अब और जीने की इच्छा नहीं रही। पता नहीं कब यह घट टूट जाये। तू एक उपकार करे तो भार-मुक्त हो जाऊं।"

लछमी जिज्ञासा से भर गयी।

मामा ने फिर कहा, "एक शानो की ज़िम्मादारी है मुझ पर, चाहता हूँ अपने हाथों उसके हाथ पीले कर दूं। अब तो रतन को भी जल्दी ही नौकरी पर जाना है—जाने से पहले उसे इन बन्धनों में बांध दो बच्चू बन्धा रहेगा।"

रतन बाहर, दरवाजे के पास ही खड़ा था; मामा की बात सुनी तो खुशी से पागल हो गया। वह दौड़ा—शानो को यह बात सुनाये बिन। वह कैसे रह सकता था।

—वेद राही।